भारतेंदु-युगीन निबंध

[भारतेंदु-युगीन निबंधों की व्यापक
गवेषणा और विवेचना]

लेखक

शिवनाथ एम० ए०

प्रकाशक

सरस्वती-मंदिर,

बनारस

पुस्तक-विक्रेता
नंदकिशोर एंड ब्रदर्स
चौक, बनारस

प्रथम संस्करण; १००० प्रतियाँ
संवत् २०१० वि०
मूल्य २॥)

मुद्रक
मुन्नीलाल
कल्याण प्रेस, बनारस

आदिबंध

प्रस्तुत पुस्तक मे कुछ नवीन सामग्री के आधार पर भारतेंदु-युग के निबंधो की इयत्ता और महत्ता नापने-तौलने का प्रयत्न मैंने किया है। इससे यदि किंचित् भी नयी सूझ-बूझ साहित्य मे आए तो मैं अपने को सफल समझूँगा। पुस्तक की सामग्री का सग्रह मैने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से किया है। एतदर्थ मैं 'सभा' का बहुत ही कृतज्ञ हूँ। श्रीयुत व्रजरत्नदास के बहुमूल्य और दुर्लभ पत्र-पत्रिकाओं के सग्रह से भी मुझे पुस्तक के लिए काफी सामग्री मिली है। मैं इन महानुभाव का भी बहुत-बहुत अनुगृहीत हूँ। पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन के लिए मै अपने प्रकाशक बधु और भाई श्रीरामजी वाजपेयी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

शातिनिकेतन
१ १. '५३.

शिवनाथ

सूची-बंध

लेखक के अन्य ग्रंथ

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२. आधुनिक साहित्य की आर्थिक भूमिका
३. हिंदी-नाटकों का विकास
४. भारतेंदु की कविता
५. अनुशीलन
६. मीमांसिका
७. हिंदी-कारकों का विकास

भारतेंदु-युगीन निबंध

१

निबंध

इस गद्य-प्रधान आधुनिक काल में गद्य को लेकर साहित्य-रचना का जो अंग विशेष रूप से परिपुष्ट, गुणसमन्वित तथा व्यापक बना और बनता चल रहा है उसका नाम है निबंध। अपनी अनेकरूपता के कारण वह वर्तमान साहित्य-विधान के क्षेत्र में अनेक दिशाओं में प्रसरित दृष्टिगत होता है। आज काव्य तथा कथा-साहित्य के अतिरिक्त जितना साहित्य प्रस्तुत हो रहा है वह निबंध के ही रूप में। निबंध की व्यापकता का कारण उसकी बहुरूपता के अतिरिक्त उसकी अनेकरूपता भी है। अभिप्राय यह है कि निबंध अपनी बहुरूपता, अनेक-प्रकारता और गुणसंनिविष्टि के कारण आधुनिक काल के साहित्य को उत्तरोत्तर प्रभावित करता और उस पर छाता चल रहा है। इस प्रकार निबंध का महत्त्व आज सहज ही बोधगम्य है।

आज निबंध का जो रूप हमारे संमुख है उसे देखने से स्पष्टतः लक्षित होता है कि वह एक गद्य-विधान है, वह गद्य की काया में सीमित होकर व्यक्त होता है। आधुनिक काल में गद्य ने खूब प्रतिष्ठा भी कमा ली है, आज उसका महत्त्व काव्य वा पद्य से कुछ कम नहीं आँका जाता—उत्तरोत्तर उसने अपने में इतनी विशिष्टताएँ संनिहित कर ली हैं। जीवन की व्यावहारिकता तथा गद्य को समक्ष रखकर हम इस (गद्य) पर विचार करें; तो भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं स्थापित होता। संसार के अनेक साहित्यों का आरंभ पद्य से चाहे हुआ हो और कुछ शतियों तक उसकी प्रधानता भी चाहे रही हो, पर यह सत्य है कि मानव-जीवन के आरंभ से ही नित्यप्रति के व्यवहार में गद्य ही प्रयुक्त रहा। भाषा की उत्पत्ति तथा उसके विकास के विषय में विज्ञ चाहे किसी भी 'वाद' की स्थापना का प्रतिपादन करें, इस तथ्य से उनका कहीं भी विरोध पड़ता नहीं दिखाई पड़ता। इस तथ्य का न अनुकरणमूलकतावाद से विरोध है और न मनोभावाभिव्यंज-कतावाद से ही; इसी प्रकार यह न यो-हे-हो-वाद में बाधक है और न डिंग डेंग-

बाद मे ही। कारण यह है कि चाहे मानव को जगली और बर्बर मानकर भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास पर विचार किया जाय चाहे उसे शिष्ट और सर्वगुण-सम्पन्न मानकर यह ध्रुव निश्चित-सा जान पडता है कि वह अपनी किसी भी अवस्था मे पद्य का प्रयोग अपने जीवन के नित्यप्रति के व्यवहार मे न करता रहा होगा, गद्य का ही व्यवहार करता रहा होगा। विश्व-साहित्य के वे काल जिनमे साहित्य की सर्जना पद्य मे ही होती रही, और यदि गद्य मे होती भी थी तो यदाकदा और अत्यल्प, उन कालो मे भी जीवन के व्यावहारिक पक्ष मे गद्य का ही प्रयोग चलता रहा होगा, पद्य का नही। वस्तुतः बात यह है कि पद्य, जिसका ग्रहण काव्य रचना के लिए साहित्य-क्षेत्र मे सब से पहले हुआ, विद्या और बुद्धिबल सापेक्ष्य है। सामान्य व्यक्ति इसका प्रयोग और उपयोग करने मे असमर्थ होता है। ऐसा हम काव्य वा साहित्य को दृष्टि मे रखकर कह रहे है। तो, साहित्य के क्षेत्र मे पद्य का ही ग्रहण सर्व प्रथम हुआ, पर व्यावहारिक दृष्टि से गद्य का प्रयोग पद्य की अपेक्षा प्राचीन निश्चित होता है। जो गद्य प्राचीन होते हुए भी साहित्य के क्षेत्र मे गृहीत न किया जा सका था, कालातर मे उत्तरोत्तर विकसित और गुणसमन्वित होकर इस योग्य बना कि वह भी साहित्य-रचना के लिए गृहीत किया जा सके। वह इस क्षेत्र मे गृहीत भी किया गया और आधुनिक काल मे वह इतना समर्थ हो चुका है कि साहित्य के क्षेत्र मे उसीका बोलबाला है। हमारा प्रतिपाद्य यह है कि गद्य जीवन के क्षेत्र मे अपनी प्राचीनता, विस्तार और व्यापकता को स्थापित करता हुआ उत्तरोत्तर विकसित होकर साहित्य के क्षेत्र मे भी अपनी व्यापकता की स्थापना अब कर चुका है, और निबध की रूपरेखा गद्य की काया मे ही व्यक्त होती है।

इसका तो निर्णय हुआ कि निबध एक गद्य-विधान है। पर आज गद्य-विधानो की इतनी भरमार है कि निबध की परिमिति सहसा बॉध लेनी एक जटिल समस्या हो गई है। अतः किस गद्य-विधान को हम निबध कहें, इसका निराकरण करना होगा। ऊपरी रूपरेखा को दृष्टि-पथ मे रखकर निबंधो पर विचार करने से विदित होता है कि जिस प्रकार काव्य के क्षेत्र मे पद्य-मुक्तक होते है उसी प्रकार निबध भी एक मुक्तक रचना है, शर्त केवल इतनी ही है कि वह गद्य मे हो। अर्थात् निबध गद्य-मुक्तक है, जिसे हम गद्य की विषय पर्यवसायिनी —अपने मे ही सीमित—रचना के रूप मे ग्रहण कर सकते है। तो निबध अपने मे ही परिसीमित रचना है, उसका सबध अन्य निबधो से न होना चाहिए। इसे यो कहे कि निबध मे प्रबधत्व न हो, वह एक दूसरे से बॅधा न हो। ऐसी स्थिति मे किसी पुस्तक के अध्याय की सीमा मे सीमित गद्य-विधान एक दूसरे

से सबद्ध होने के कारण निबंध की श्रेणी में न आएँगे, क्योकि उनमे पूर्वापर सबध होने से उनका मुक्त व्यक्तित्व नही स्थापित किया जा सकता। जो ग्रथ निबंध सग्रह द्वारा बनते है उनकी बात दूसरी है, उनमे तो निबंध है ही। यदि निबंधों की सीमा इस प्रकार न बाँधी जायगी तो साहित्य के गद्य-विधान के क्षेत्र मे हमे निबंध ही निबध दृष्टिगोचर होगे और सभी गद्यकार ताल ठोककर यह दावा करने के लिए आमादा हो जायँगे कि हम भी निबधकार हैं; क्योंकि हमारी पुस्तक के प्रत्येक अध्याय एक-एक निबंध के ही रूप मे तो है! पर वस्तुतः बात ऐसी नही है और न समीक्षकों द्वारा इस प्रकार कभी ग्रहण ही की गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्लकृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रत्येक काल के सामान्य परिचय, उसमे आधुनिक कविता पर विवेचन तथा ऐसे ही अन्य स्थल कभी निबंध के रूप मे गृहीत नही हुए और न उन्होने ही कही उन्हे निबध का नाम दिया। आधुनिक काल मे निबध का महत्त्व बढ जाने के कारण, उसकी स्वतत्र सत्ता की स्थापना के लिए इस प्रकार का कुछ विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ निबध की बाह्य रूप-सीमा की एक स्थूल चर्चा इसलिए करनी पड़ी कि आगे 'निबंध' शब्द के प्रयोग पर कुछ विचार करना है। निबध की बाह्यान्तर रूप-सीमा का विवेचन तो अभी अपेक्षित ही है, जो यथास्थल होगा।

भारतीय तथा अभारतीय दोनो साहित्यो मे वर्तमान काल मे 'निबंध' और कुछ ही भिन्न अर्थो मे गृहीत इसके पर्यायवाची शब्द 'प्रबध' तथा 'लेख' का प्रयोग गद्य की ही रचना के लिए होता है। पहले इसके प्रयोग की सीमा गद्य तक ही न थी, वह पद्य की रचना के लिए भी प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार 'प्रबध' तथा 'लेख' शब्द के प्रयोग का विस्तार भी पद्य तक था। सस्कृत-साहित्य मे 'निबध' और 'प्रबध' का प्रयोग किसी भी मौलिक रचना के लिए होता था।* गद्य और पद्य का बन्धन वहाँ नही प्रतीत होता। प्रायः पद्य की काया मे स्थित प्रबध काव्य की चर्चा आज भी हम करते है। इसी प्रकार पद्य-निबध और

---

* यदक्षपादः प्रवरो मुनीना
कामाय शास्त्र जगतो जगाद।
कुतार्किका ज्ञाननिवृत्तिहेतुः
करिष्यते तस्य मया निबंधः॥
—श्रीभरद्वाजोद्योतकरकृत न्यायवार्तिक, श्लोक १।

× × ×

बह्वपि स्वेच्छया काम प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसबधः प्रबन्धोदुरुदाहरः।
—माघकृत शिशुपालवध, सर्ग २, श्लोक ७३।

पद्य-प्रबंध की बात भी यदाकदा हमारे साहित्य मे होती है। अभिप्राय यह कि वर्तमान काल मे निबंध तथा प्रबंध वा लेख का क्षेत्र केवल गद्य ही मान्य है, पर प्राचीनकाल मे इसके लिए केवल गद्य का क्षेत्र ही निर्धारित न था। पद्य-रचना के लिए भी इसका प्रयोग समीचीन समझा जाता था। और; यदि तनिक गहरे पैठ देखा जाय तो विदित होगा कि प्राचीन काल मे उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग प्रमुखतः पद्य की ही रचना के लिए होता था। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पूर्व के कालो मे कलाकारो की दृष्टि साहित्य के सभी अगो की रचना के लिए पद्य के ही ग्रहण पर थी। उपर्युक्त शब्दो के अर्थों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि हम उन्हे किसी एक (गद्य वा पद्य) के दायरे मे फेर भी नही सकते; क्योकि पूर्वापर सबध दोनो प्रकार की रचनाओ मे हो सकता है—चाहे वे गद्य मे लिखी जायँ अथवा पद्य मे। वस्तुत ये 'बधान' के बोधक है, जो पद्य और गद्य दोनो ही शैली की रचनाओ मे मिल सकता है।

निबध, प्रबध और लेख पर गद्य-पद्य की दृष्टि से यदि हिंदी-साहित्य को लेकर ऐतिहासिक विवेचन किया जाय तो विदित होगा कि भारतेंदु तथा द्विवेदी-युग के प्राचीन ढर्रे के कुछ लेखक, जिनका सबध संस्कृत से था, इनका प्रयोग दोनो शैलियो मे लिखी गई रचनाओ के लिए करते थे। जैसे—

यही समझकर राजा शिवप्रसाद सी० एस० आई० ने अपने गुटका के पहले और दूसरे खड मे भारतीय ग्रथकारो के उत्तम उत्तम गद्य पद्य लेखो का सग्रह किया था जिनको विद्यार्थी बड़े प्रेम और श्रद्धा से पढ़ते और उनसे मातृभाषा का विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे। †

× × ×

उसमे ('सरस्वती' मे) भिन्न-भिन्न लेखको के हिंदी पद्यमय अच्छे अच्छे निबध छपते है। ❀

प्रतीत ऐसा होता है कि द्विवेदी-युग के पूर्ण उन्मेष काल मे (लगभग सन् १९१४ में) जब हिंदी-साहित्य मे खड़ीबोली मँज-सँवर कर पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गई और जब इसमे नवीन शिक्षा-दीक्षा से भी पूर्ण लेखक लिखने लगे तब निबध, प्रबध और लेख के लिए गद्य की ही सीमा एकान्ततः स्वीकृत कर ली गई। इसके पूर्व यदाकदा कुछ लेखक इसका प्रयोग गद्य-पद्यमयी दोनो शैलियो की रचनाओ के लिए करते थे, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है।

---

† समालोचक, भाग १, अक १ (सन् १९०२)।

❀ समालोचक, भाग १, अक ४ (सन् १९०२)।

निबध वा उसके पर्यायवाची शब्दो के प्रयोग की चलन गद्य और पद्य दोनो प्रकार की रचनाओ के लिए संस्कृत और हिंदी-साहित्य में ही नही थी, अँगरेजी साहित्य मे भी इसके पर्यायवाची शब्द 'एसे' का प्रयोग पद्यमयी रचना के लिए भी कुछ लेखकों ने किया है। गद्य की रचना के लिए इसका प्रयोग तो है ही। अलेक्जेंडर पोप (सन् १६८८—१७४४) ने 'एसे ऑन मैन' और 'एसे ऑन क्रिटिसिज्म' पद्य मे ही लिखा था, यद्यपि निबध का पर्यायवाचो 'एसे' शब्द इन रचनाओ के साथ जुड़ा हुआ है।

निबध, प्रबध और लेख का प्रयोग कभी उन रचनाओ के लिए भी होता था जो पद्य-पद्धति मे लिखी जाती थी और उनके इस पद्धति मे लिखे जाने का कारण भी था तथा उपयुक्तता भी थी। इसका विवेचन हम देख चुके है। पर, वर्त्तमान काल मे जिसे हम निबंध कहते है और जो सच्चे अर्थों मे निबंध है उसकी रचना पद्य मे की जाय इसका; सपना भी नही देखा जा सकता। आज निबध-रचना के लिए केवल गद्य का ही ग्रहण किया गया है, जो निबध की विशिष्टताओ की अभिव्यक्ति का सरल और सहज साधन है।

हिंदी-साहित्य मे गद्य की जिस प्रकार की रचना के लिए आज 'निबंध' शब्द का प्रयोग होता है उस प्रकार की रचना के लिए इस शब्द का प्रयोग भारतेंदु-युग के लेखक—जिनमे से कुछ द्विवेदी-युग के उन्मेष काल तक विद्यमान थे—करते नही दिखाई पडते। उपर्युक्त युग के लेखक 'निबंध' के अर्थ मे 'लेख' शब्द का प्रयोग करते थे, जो आज 'निबध' का अति सामान्य प्रकार समझा जाता है—विवेचकों की दृष्टि से। वैसे तो इस शब्द के प्रयोग द्वारा इसके अंतर्गत आज 'निबंध', 'प्रबध' सभी आ जाते है। यद्यपि उस युग के लेखक 'लेख' शब्द का प्रयोग करते थे—'निबध' के अर्थ मे—तथापि उनके लेखो मे वर्तमान काल में गृहीत निबंध की सभी विशिष्टताएँ दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन लेखकों के निबध के अवलोकन द्वारा यह बात प्रमाणित हो जायगी। इस तथ्य की पुष्टि के लिए कुछ उदाहरणों की आवश्यकता प्रतीत होती है। भारतेंदु श्री हरिश्चद्र द्वारा संपादित 'श्री हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' के आदर्श वाक्य मे 'लेख' शब्द का ही प्रयोग है—

नवीन प्राचीन सस्कृत भाषा और अगरेजी मे गद्य पद्य मय काव्य, प्राचीन वृत्त, राज्य संबधी विषय, नाटक, विद्या और कला पर <u>लेख</u>, लोकोक्ति, इतिहास, परिहास, गप्प और समालोचना संभूषिता।*

---

* श्री हरिश्चद्रचद्रिका, खड १, सख्या ९ (जून, सन् १८७४ ई०)

भारतेंदु युग के लेखक श्रीबालकृष्ण भट्ट तथा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भी 'लेख' शब्द का ही प्रयोग करते दिखाई पड़ते है—

लेख पढ़ कुद की कली समान दॉत न खिल उठे तो वह लेख ही क्या !†

× × × ×

"जिन्होने (श्रीबालकृष्ण भट्ट ने) हिंदी की अमूल्य सेवा कर सब लोगो मे हिन्दी पत्र पठन की रुचि उत्पन्न की जब हिंदी पत्रों की सख्या कदाचित् दो तीन से अधिक न थी और तब से अब तक उनके लेख बहुत आदर और प्रतिष्ठा से पढ़े जाते है, ‡

यों ही अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते है। इनके द्वारा विदित होता है कि जब हिंदी-साहित्य मे निबध रचना का आविर्भाव-काल था तब उसके लिए 'लेख' शब्द का ही प्रयोग होता था। एकाध स्थल ऐसा भी प्राप्त होता है जहॉ 'लेख' और 'प्रबध' समानार्थबोधक के रूप मे प्रयुक्त हुए है। 'एक वग महिला' अपने 'गृह' शीर्षक निबंध की पाद-टिप्पणी मे लिखती है—

यह प्रबध प्रवासी नामक (वगला) मासिक पत्र के लेख का ममानुवाद है।††

यद्यपि यहॉ 'लेख' के समान अर्थ मे 'प्रबध' का प्रयोग हुआ है तथापि आज 'प्रबध' द्वारा जो विस्तार तथा विषय-प्रतिपादन मात्र मे निष्ठता का बोध होता है वह उक्त 'गृह' निबंध मे नही है। इसकी काया छोटी है और उस समय के निबध जिस रूप मे व्यक्त होते थे इसका रूप भी वही है।

इस विवेचन का अभीष्ट यह है कि आधुनिक काल में, जो गद्य काल के नाम से अभिहित होता है और जिस काल के आरभ मे गद्य मे साहित्य के विविध अग प्रस्तुत होने आरभ हुए, पहले 'निबंध' के लिए 'लेख' शब्द का ही प्रयोग होता था। उस काल के लेखक लेख के लिए 'प्रबध' का भी प्रयोग करते थे पर विरलतः ही। इसका भी उल्लेख हो चुका है। ढूँढ़ने पर 'निबंध' का भी प्रयोग मिल सकता है, पर इसे भी विरल ही समझना चाहिए। हमारी दृष्टि तो ऐसे शब्द पर है जो सभी लेखकों द्वारा प्रचुरतः प्रयुक्त होता था। साहित्य मे प्रयोग की प्रचुरता ही किसी तथ्य के प्रमाण का हेतु हो सकता है। भारतेंदु श्री-

---

† हिंदी-प्रदीप, जिल्द २३, संख्या १।२।३ (सन् १९०० ई०)

‡ आनन्द कादंबिनी, माला ६, मेघ ११, १२ (सं० १९६३)

†† वही, माला ५, मेघ ५, ६ (सं० १९६१)

हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के अन्य लेखकों के उदाहरण ऊपर दिए गए है। इन लेखको मे से श्री भारतेंदु के अतिरिक्त प्रायः सभी द्विवेदी-युग मे विद्यमान थे। हमारा प्रतिपाद्य यह भी है कि उस समय जिस प्रकार की रचना के लिए 'लेख' शब्द का प्रयोग होता था वह 'निबध' के आधुनिक निर्धारित विशिष्टताओं से अनेक अंशो मे युक्त था। एक विशिष्ट प्रकार की गद्य की रचना के लिए 'निबध' का प्रयोग विशेष प्राचीन नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार की रचना के लिए 'निबध' का प्रयोग द्विवेदी-युग की पूर्ण प्रतिष्ठा के समय से ही समझना चाहिए—लगभग उसी समय से जिस समय से यह निश्चित रूप से स्वीकृत कर लिया गया कि निबंध पद्य मे नही गद्य में ही लिखा जा सकता है। निबंध से हमारा तात्पर्य विशिष्ट प्रकार की आधुनिक गद्य रचना से है, जिसे आज निबध कहा जाता है, पद्य-निबंध से नही।

निबध की रूप-विवेचना के पूर्व इसका निर्देश आवश्यक प्रतीत होता है कि आधुनिक काल मे भारतीय वा हिंदी-साहित्य मे निबध-लेखन की प्रेरणा अभारतीय वा पश्चिमी साहित्य से ही मिली। भारत के प्राचीन साहित्य मे निबध का जो रूप था, जिसका दर्शन यथास्थल अन्यत्र होगा, उसका कोई अंश आधुनिक काल के निबधकारो मे नही दिखाई पडता। आधुनिक काल के निबधकारों से अभिप्राय है उन निबंधकारो से जो निबध के आविर्भाव-काल—भारतेंदु-युग—मे थे, जिनके द्वारा निबंध-लेखन का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु-युग के निबंधकारो के अतिरिक्त तत्कालीन भारत के अन्य साहित्यो के निबन्धो वा निबन्धकारों के विषय मे भी यही समझना चाहिए। तत्कालीन साहित्यकारों का इस क्षेत्र मे अभारतीय साहित्य से प्रेरित होने के लिए अनेक कारण भी विद्यमान थे। उस समय तक अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा के समुचित प्रबध के कारण भारतीय शिष्ट जनता अँगरेजी-साहित्य के सानिध्य मे भली प्रकार आ चुकी थी और आ भी रही थी। ऐसी स्थिति मे अभारतीय साहित्य की प्रेरणावश हिंदी की उन्नति को सदैव दृष्टि-पथ मे रखकर चलनेवाले उस समय के साहित्यकार अपने साहित्य मे एक नवीन प्रकार की साहित्य-विधान-शैली के संनिवेश का लोभ संवरण नहीं कर सकते थे। अतः उन्होने गद्य का अवलबन कर निबंध-रचना का आरभ किया। भारतीय साहित्य की परम्परा मे निबंध का जो रूप था उसकी ओर तत्कालीन साहित्यकारो की दृष्टि न जाने के कई कारण थे। प्रथमतः तो यहकि जो आकर्षक वस्तु समुखित उपस्थित थी उसके द्वारा लोगों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। द्वितीयतः यह कि भारतेंदु के समय तक आते-आते संस्कृत-

साहित्य का अध्ययन-मनन तथा उसकी परंपरा का सम्यक् परिचय मध्यम श्रेणी की विद्या-बुद्धिवाले व्यक्ति के लिए कुछ दूर पड़ गया था—विशेषतः अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा, आचार-व्यवहार और रीति-नीति के प्रति लोगो की अभिरुचि आकृष्ट कर लेने के प्रयत्नो के कारण। और, तृतीयतः तथा मुख्यतः यह कि भारतीय साहित्य मे निबंध का जो पद्य-गद्यमय—कारिका-वृत्तिमय—रूप था; यथा—'काव्य-प्रकाश,' 'रसगंगाधर' आदि मे, तत्कालीन एकांततः गद्यमय निबंध से उसका मेल नही खाता था। हम कहना यही चाहते है कि हिंदी-साहित्य मे निबंध-लेखन की प्रेरणा पश्चिमी है, सत्य यही है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। हाँ, उन लोगो के सामने हमे यह बात दो कदम पीछे हटकर और चेहरे पर कुछ भय का भाव लाकर कहनी होगी जो पहले तो किसी वस्तु को दूसरे देश के साहित्य से ग्रहण कर लेते है और बाद मे यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते है कि हमारी प्रेरणा भारतीय है, विदेशी नहीं। आज हिंदी में एकांकी नाटको, रचना की कुछ अन्य पद्धतियो और इसी प्रकार कुछ दूसरी प्रवृत्तियो का भी मूल कुछ लोग ढूँढते ढूँढते भारतीय साहित्य के आदि ग्रंथो तक पहुँचते है, यद्यपि आधुनिक काल मे इनका ग्रहण विदेशी साहित्य से ही हुआ। समरथ के नहि दोस गुसाईं! चाहे इस प्रकार के प्रतिपादन का सामर्थ्य वेदो और उपनिषदो के अँगरेजी अनुवादो को पढने से ही आवे!!

निबंध के रूप-दर्शन की सुविधा के लिए उसके बहिरंग और अंतरंग को पृथक्-पृथक् देखना उचित प्रतीत होता है। पहले हमारी दृष्टि उसके बहिरंग पर ही जायगी। निबंध के बहिरंग से हमारा अभिप्राय उसकी काया वा उसके आकार-प्रकार और विस्तार से है। निबंध गद्य की एक छोटी रचना है, इसका बोध स्वतः 'निबंध' शब्द द्वारा ही होता है। 'निर्बंध' का 'नि' उपसर्ग लघुता का ही बोध कराता है। तात्पर्य यह कि निबंध की काया छोटी होती है, उसका आकार-प्रकार विस्तृत नही होता। निबंध के आकार की लघुता को पश्चिमी समीक्षक भी स्वीकार करते है। प्रश्न होता है वह कितना छोटा हो? इसके समाधान के दो ही मार्ग दृष्टिगत होते है। एक तो निबंध के लिखित वा मुद्रित रूप को देखकर और दूसरे उसके पढने के समय को देखकर। निबंध की काया के विषय मे इन दृष्टियो से विचार पर मतैक्य की संभावना नही दिखाई पडती। कोई कुछ कह सकता है, कोई कुछ। फिर भी स्थूल रूप से इस पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि बडा से बडा निबंध तीस-चालीस पृष्ठो से अधिक नहीं होना चाहिए और वह अधिक से अधिक इतना बडा हो कि घंटा-सवाघंटे मे समाप्त हो जाय। स्मरण रखने की बात यह है कि निबंध की काया के

विस्तार के विषय मे यह विचार अत्यंत स्थूल प्रमाणित हो सकता है। यहाँ एक संमति की दृष्टि से ही इस प्रकार की बात कही गई है। पर इस विषय में निश्चित रूप से यह तो कहा ही जा सकता है कि निबध का बाह्य रूप छोटा होना चाहिए और वह इतना छोटा हो कि थोड़े समय मे ही पढकर समाप्त किया जा सके।

निबध के अतरग-दर्शन से हमारा अभिप्राय उसके उन तत्त्वों वा विशिष्टताओं की विवेचना से है जिनका सविधान सच्चे अर्थों मे गृहीत निबंध के लिए आवश्यक माना गया है। इसमे तो सदेह नही कि गद्य-प्रधान आधुनिक काल मे निबध साहित्य का एक अग स्वीकृत हो चुका है। अतः निबध मे साहित्योचित विशेषताओं का होना आवश्यक है। उसमें वे तत्त्व होने चाहिए जिनके द्वारा श्रोता वा पाठक का मन रम सके, जैसा कि साहित्य द्वारा रमता है। निबध मे मन रमाने की शक्ति है और शिष्ट साहित्यिक श्रोता और पाठक का मन उसमे रमता है, यह निर्विवाद है। निबध को लेकर इस निर्विवादिता के समर्थन के लिए गद्य-प्रधान आधुनिक काल के साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालनी होगी। साहित्य का गद्य-प्रधान आधुनिक काल बुद्धि-प्रधान काल है, जिसका आरभ ईसा की उन्नीसवी शती के चतुर्थ चरण से हो गया था और जो इस बीसवीं शती मे पूर्णतः व्याप्त है। साहित्य का यह काल सामाजिक दृष्टि से इतना सघर्षमय रहा कि जो साहित्यकार समाज और साहित्य का घनिष्ट सबध स्वीकार करते थे वे सघर्ष-शाति के प्रयत्न के हेतु साहित्य मे समाज के चित्रण पर विशेष दृष्टि रखने लगे। सघर्ष-शाति के लिए वे अपने साहित्य में सुझाव भी पेश करने लगे, जो कभी साहित्य के आवरण मे पूर्णतः ढँका रहा और कभी नग्न उपदेशवाद के रूप मे विद्यमान था। इस प्रकार समाज पर अधिक दृष्टि होने के कारण और उसके सुधार की आकाक्षावश इन साहित्यकारो की दृष्टि साहित्य के क्षेत्र मे बुद्धिवादी थी। ये लोग अपने साहित्य मे समाज की समस्याओं को रखकर उसका समुचित हल पेश करने का प्रयत्न करते थे, जिसका सबध अवश्य ही बुद्धिवाद से है। साहित्य के आधुनिक काल मे गद्य की प्रधानता का विशेष कारण यह बुद्धिवाद ही है, जिस गद्य द्वारा हमारी बुद्धि का प्रकाश सुविधापूर्वक हो जाता है। इस प्रकार के साहित्यकारो द्वारा साहित्य के उन अगो और उन शैलियो की गौणता प्रतिपादित की गई जिनका संबंध हृदय से विशेष है। यही कारण है कि साहित्य के क्षेत्र मे इस काल मे काव्य-धारा का प्रवाह मद और क्षीण दिखाई पड़ता है। इन लोगो ने काव्य-रचना गौणरूप से ग्रहण की और काव्य के ही समकक्ष प्रतिष्ठित

होनेवाले साहित्य के अग नाटक का ग्रहण तो किया पर उसकी काव्यात्मकता को उससे वंचित रखकर। नाटक में इन्होने गद्य के तत्त्वो और शैलियो का संविधान विशेष रूप से किया। इनका प्रधान क्षेत्र साहित्य का एक दूसरा अग, जिसे कथा कहा जाता है और जिसके भीतर उपन्यास और कहानी आती है, रहा। इन लोगो ने नाटक को भी ऐसा रूप दिया कि वह कथा-साहित्य से कुछ विशेष भिन्न नहीं रहा, यदि रहा तो केवल सवाद, अभिनय की दृष्टि से। इस प्रकार हम देखते है कि इन साहित्यकारो की दृष्टि विशेषतः नाटक, उपन्यास और कहानी पर रही, जो गद्य की काया मे व्यक्त होते हैं और जिनमे प्रायः समाज की समस्याएँ ही विशेषतः प्रदर्शित की जाती है और प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः उनका हल भी। हम यह बता चुके है कि बुद्धिवाद के कारण साहित्य का यह रूप वर्तमान काल मे आया। साहित्य के उपर्युक्त अगो मे व्यक्तिवैचित्र्यवाद की प्रधानता का कारण भी बुद्धिवाद ही हैं, क्योंकि ये साहित्यकार अपनी रचनाओ म अपने लक्ष्य वा सदेश की अभिव्यक्ति द्वारा श्रोता पाठक वा दर्शक की बुद्धि को प्रधानतः प्रभावित करना चाहते थे और हृदय को गौणतः, और इसकी सिद्धि के लिए व्यक्तिवैचित्र्यवाद का साधन ही विशेष उपयुक्त था। हमारी धारणा यह है कि साहित्य-क्षेत्र मे व्यक्तिवैचित्र्यवाद का ग्रहण बुद्धि को ही प्रभावित करने के लिए विशेष रूप से हुआ। इस प्रकार विदित होता है कि आधुनिक काल में बुद्धिवाद की प्रधानता के कारण गद्य का ग्रहण हुआ और उसमे साहित्य के अनेक अगो की रचना होने लगी। साहित्य के इन अगो की रचनाओ मे साहित्यकार की दृष्टि हृदय को प्रभावित करने की ओर उतनी नहीं दिखाई पडती जितनी बुद्धि को प्रभावित करने की ओर, इसका कारण सामाजिक सघर्ष था, इसे हम देख चुके है। अभिप्राय यह कि अब साहित्य बुद्धिप्रधान हो चला था, हृदय के लिए भी उसमे स्थान था, पर गौण। ये बाते हमने किसी एकदेशीय साहित्य को दृष्टि पथ मे रखकर नही कही है प्रत्युत विश्व-साहित्य को दृष्टि-पथ मे रखकर। ऐसा कहने का कारण यह है कि आधुनिक काल गद्य-काल के रूप में सभी देशो के साहित्यों मे गृहीत है और उनके साहित्यो की प्रवृत्तियाँ प्रायः समान है। यहीं यह भी कह दिया जाय कि हमारे वर्तमान साहित्य का रूप भी इसी प्रकार का है। साहित्य के क्षेत्र में गद्य का ही आश्रय लेकर उसके एक अग निबंध की रचना की चलन भी अपने सच्चे अर्थ में इसी समय हुई। इसमें भी हृदय और बुद्धि की नियोजना का परिमाण उतना ही रहा जितना साहित्य के अन्य अगों में। अर्थात् निबंध मे भी बुद्धि प्रधान रही और हृदय गौण। कहना तो यह चाहिए कि बुद्धि के प्रकाश के लिए ही साहित्य के इस

अग का ग्रहण हुआ। बुद्धि अपना रूप साहित्य के अन्य अगो मे भली भाँति नही दिखा सकती थी, विचारो का आदान-प्रदान, प्रतिपादन आदि साहित्य के दूसरे अगो मे भली प्रकार नहीं होता था, अतः उसके एक ऐसे अग का ग्रहण एकातत. कर लिया गया, जिसके द्वारा उपर्युक्त कार्य सिद्ध हो जाय, और इसी कार्य-सिद्धि के लिए निबंध का ग्रहण हुआ। पर, वह साहित्य साहित्य नही, जिसमे बुद्धि ही अपने दाँत कटकटाती रहे, वह तो तर्क और गणित शास्त्र हो जायगा। ऐसी स्थिति मे निबध मे हृदय की नियोजना का भी प्रवेश निर्धारित किया गया। हाँ, इसमे हृदय की गौणता अवश्य होगी। अब हम उस प्रश्न का उत्तर दे दें जो इस विवेचन के पूर्व उठा था—क्या निबध मे मन रमाने की शक्ति है? यदि आधुनिक काल मे निर्मित बुद्धिप्रधान साहित्य के अन्य अगो मे हृदय को रमाने, मन को चमत्कृत करने की शक्ति है तो यह निर्विवाद है कि उसी श्रेणी मे प्रतिष्ठित निबध मे भी वह शक्ति अवश्य है। यदि आधुनिक काल मे निर्मित नाटक और कथा-साहित्य मे रमणीयता है तो कोई कारण नही कि सच्चा निबध यह रमणीयता न धारण करता हो, आवश्यकता केवल शिष्ट रुचि के साहित्यिक श्रोता और पाठक की है।

ऊपर की मीमासा से यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि निबध गद्य की एक बुद्धिप्रधान रचना है, अर्थात् विचारप्रधान रचना है, अर्थात् विचारात्मक रचना है। इसमे निबधकार अभीष्ट विषय पर विचार बुद्धिपूर्वक करता है; और इस प्रकार विचार करते हुए वह उस (निबध) मे जो वस्तु नियोजित करता वह उस (निबधकार) की बुद्धि की नवीन-नवीन उद्भावनाओ की लड़ी-सी प्रतीत होती है। निबंध मे निबधकार अभीष्ट विषय का प्रतिपादन आद्योपान्त बुद्धिपूर्वक करता हुआ अपनी नवीन-नवीन चिंतनाओ की शृखला को उस (निबंध) मे सजाता है। चिंतनाओ की इस शृखला के कारण निबध मे आदि से अत तक एकतानता का संनिवेश हो जाता है, जो निबध के प्रधान तत्त्वों मे से एक है। इस प्रकार विदित होता है कि निबंध मे अभीष्ट विषय का प्रतिपादन बड़े चुस्त वा कसे रूप मे होता है। 'निबध' शब्द मे पड़ा 'नि' उपसर्ग निबध की काया की ओर तो सकेत करता ही है वह उसमे प्रतिपाद्य विषय के लाघव वा उसकी चुस्ती का भी बोध कराता है, क्योकि 'नि' द्वारा 'नैकट्य' का भी अर्थागम होता है। निबध मे 'नैकट्य' का अभिप्राय होगा उसमे प्रतिपाद्य विषय का पास-पास होना, उसमे चुस्ती का संनिवेश। निबध पर यह विचार निबधकर्ता को दृष्टि मे रखकर हुआ है। निबंध वा साहित्य के किसी भी अग का एक दूसरा पक्ष भी होता, और वह पक्ष कर्ता के पक्ष से

किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, क्योंकि कर्ता की रचना का साफल्य उसी पक्ष मे जाकर सिद्ध होता है। वह पक्ष है श्रोता, पाठक और दर्शक का। निबंध को लेकर केवल श्रोता और पाठक का—विशेषतः पाठक का ही—पक्ष आता है। निबंध का जो रूप ऊपर स्थापित किया गया है उसके अनुसार पाठक को भी निबंध के अध्ययन-मनन के हेतु बुद्धि का श्रम करना पड़ेगा, तभी वह उसकी वस्तु को पचा पायगा, अन्यथा नहीं। वस्तुतः निबंध कोई मगदल नहीं है कि मुँह मे रखकर धीरे से गले के नीचे उतार गए। इस प्रकार हम देखते है कि निबन्ध की रचना की सार्थकता तथा उसके बोधन की सार्थकता दोनो के लिए बुद्धि की—सतर्क बुद्धि की—आवश्यकता है। यहाँ यह शंका उठ सकती है कि क्या इस प्रकार की बुद्धिप्रधान रचना निबंध) साहित्य की परिमिति में स्थित रहेगी, क्या वह दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र मे न चली जायगी? इसका समाधान यह है कि वस्तुतः निबंध साहित्य के क्षेत्र की वस्तु है, वह कभी रूखा-सूखा हो ही नहीं सकता। वह इस प्रकार कि निबंध के अन्य तत्त्व भी है, जिनका संनिवेश उसमे होगा और इन तत्त्वो का संबंध हृदय से है, जैसे उसमे व्यक्तित्व, हास्य-व्यंग्य-विनोद आदि की अभिव्यक्ति, जिनकी चर्चा आगे होगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि निबंध साहित्य का एक अंग है और उसकी रचना साहित्यकार द्वारा होगी, अतः वह निबन्ध मे साहित्यिकता की नियोजना करेगा। साहित्यिक होने के नाते वह जो कुछ कहेगा उसे साहित्यिक ढंग से और साहित्य को दृष्टि-पथ मे रखकर। और, इस प्रकार के व्यक्ति द्वारा रचित निबंध का पाठक भी साहित्यिक रुचि संपन्न व्यक्ति होगा। ऐसी स्थिति में, कर्ता, बोधक और बोधव्य सभी के साहित्यिक होने पर, निबंध मे रूक्षता और नीरसता कहाँ से आयगी?

इस मीमांसा द्वारा निबंध का जो सच्चा और शिष्ट रूप निर्धारित होता है, उसका निबंधकार द्वारा निबंध मे संनिविष्ट होना हँसी-खेल नहीं है। वस्तुतः निबंध रचना एक दुष्कर कार्य है। इसे भारतीय तथा अभारतीय सभी समीक्षक स्वीकार करते है। इस विषय मे श्रीरामचंद्र शुक्ल,* अँगरेज समीक्षक

* यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों मे ही सबसे अधिक संभव होता है।

—आचार्य रामचंद्र शुक्लकृत 'हिंदी-साहित्य का इतिहास,' पृष्ठ ६०५, सं० १९९७ वि०

श्री जे० डब्ल्यू० मैरियट* और फरासीसी समालोचक श्री सातबवे एक मत है। श्री सातबवे की मान्यताएँ निबध के विषय मे प्रायः वैसी ही है जैसी ऊपर निर्धारित की गई हैं। यह स्वीकार करते हुए कि निबंध-रचना एक अति कठिन कार्य है और ऐसी अवस्था मे किसी विषय पर निबध लिखने के लिए निबंधकार को उस विषय का पूर्ण पडित होना चाहिए उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि निबध साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक मनोरजक प्रणाली है। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि श्री सातबवे की दृष्टि भी निबधगत साहित्यिकता पर है। वे निबंध को चुस्त वा गागर मे सागर भरी रचना मानते है। निबध की काया की लघुता पर भी उनकी दृष्टि है, साथ ही वे निबध की अपने मे ही पूर्णता का भी प्रतिपादन करते है।†

निबध के रूप के अंतरंग तत्त्व की जो चर्चा ऊपर हुई है अँगरेजी समीक्षक और निबधकार इस विषय मे प्रायः इससे विपरीत मत प्रकट करते हैं। उन्होने निबध के रूप के विषय मे जो धारणाएँ स्थापित की है वे (धारणाएँ) हमारे यहाँ के शिष्ट साहित्यकारों को अगूढ (सुपरफिसियल) प्रतीत होगी। स्वतः वहाँ के कुछ समीक्षको को भी वे इसी रूप मे जान पड़ी है। अँगरेजी-साहित्य मे निबध के अगूढ़ रूप-निर्धारण के लिए हम किसी को दोषी नहीं ठहरा सकते, क्योकि यह रूप-निर्धारण जिस प्रकार के निबध लक्ष्य रूप मे प्रस्तुत हो चुके थे उनको दृष्टि-पथ मे रख कर हुआ है। और, ऊपर निबध का जो रूप निर्धारण हुआ है उसमें भारतीय परपरा मे चली आती हुई चितन-प्रवृत्ति का ध्यान अवश्य रखा गया है। अपने यहाँ के 'निबध' शब्द के अभिधेयार्थ की चर्चा हो चुकी है। अँगरेजी के 'एसे' शब्द का अभिधेयार्थ है—अभीष्ट विषय को प्रस्तुत करने का प्रयत्न मात्र। चितनापूर्वक प्रस्तुत विषय की विवेचना और उसका प्रतिपादन से वे निबध का संबध नहीं जोड़ते। जानसन निबध को मस्तिष्क की ढीली-ढाली उद्भावना और अव्यवस्थित तथा अपरिपक्व रचना के रूप मे ग्रहण करते हैं††। अँगरेजी साहित्य के प्रथम निबधकार

---

* The essay is a severe test of a writer, and has been described as the Ulysses, bow of literature
—J W Marriott's Modern Essays and Sketches, Introduction, P X

† देखिए W H Hudson's 'An Introduction to the Study of Literature, P 445'

†† a loose sally of the mind, an irregular, undigested piece, not a regular and orderly composition
—वही, पृ० ४४३.

माने जानेवाले लार्ड बेकन भी निबंध को निक्षिप्त प्रणिधान (डिस्पर्स्ड मेडिटेशन) मानते है* । वे अपने निबंधो को संक्षिप्त टिप्पण के रूप मे ग्रहण भी करते है जिनके प्रस्तुत करने मे इच्छा की अपेक्षा महत्ता की वृत्ति का संनिवेश विशेष है† । पश्चिमी साहित्यकार माटेन, क्रैब आदि सभी के विचार निबंध के विषय मे ऐसे ही है । सभी इसे बुद्धि से उद्भूत अव्यवस्थित और अप्राजल रचना के रूप मे निर्धारित करते है । श्री क्रैब तो इसे अनिवार्यतः (नेसेसरिली) अगूढ रचना मानते है । इस प्रकार विदित होता है कि पश्चिमी समीक्षकों की दृष्टि मे निबंध उतनी महत्त्वपूर्ण रचना नही है जितनी कि भारतीय दृष्टि से । इसका कारण वहाँ प्रस्तुत हुए निबंध के रूप ही है, इसका निर्देश हम कर चुके है । ध्यान मे रखने की बात यह है कि वहाँ के साहित्यकार निबंध को चाहे जिस भी रूप मे ग्रहण करें वे इसका संबंध बुद्धि वा प्रणिधान (माइंड और मेडिटेशन) से अवश्य जोडते है । पर उनके निबंधो मे, जिस रूप मे वे इन्हे ग्रहण करते है, बुद्धि का वा प्रणिधान का निखरा रूप नही दृष्टिगत होता । उनके निबंधो मे चिंतनाओं की गँठी और सुव्यवस्थित शृङ्खला नही मिलती ।

अँगरेजी-साहित्य के आधुनिक काल मे जो निबंध प्रस्तुत हो रहे है, जिन्हे वैयक्तिक निबंध (परसनल एसेज) कहने की विशेष चाल है, उनका रूप भी प्रायशः ऐसा ही है । इन निबंधो की विशेषता मानी जाती है अभीष्ट विषय के प्रतिपादन की गौणता और किसी विशिष्ट विषय पर रचना करते समय निबंधकार की उमंग पर आश्रित अनेक विषयो पर दृष्टिपात की प्रधानता, जिसके अंतर्गत उससे संबद्ध अनेक व्यक्ति और वस्तु के विषय में अभिव्यक्ति का समावेश हो सकता है । इस प्रकार के निबंध के रूप-निर्धारण के कारण आज निबंध में विषयांतर (डाइग्रेसन) की स्थापना मे भी विशिष्टता मानी जाती

---

* अपने 'एसे' नामक पुस्तक के समर्पण मे लिखते है—

"The word essay is late, but the thing is ancient For Seneca's Epistles to Lucilius, if one mark them well, are but essays, that is, dispersed meditations"

—वही, पृ० ४४४

† लार्ड बेकन अपने निबंधो के विषय मे कहते है—

"brief notes set down rather significantly than anxiously —वही, पृ० ४४६

है। अभिप्राय यह कि वहाँ के आधुनिक निबन्धकार भी निबन्ध मे विषय की, जिसका सबध बुद्धि वा विचारात्मकता से है, प्रधानता को विशेष महत्त्व नहीं देते। वे इसे अपनी उमंग की झोंक मे रचते है। और ऐसा करते हुए निबध मे उनसे लगे अनेक वस्तु, व्यक्ति की चर्चा आने के कारण निबन्ध मे विषयातर का सनिवेश होता है। निबध की रूप-रेखा इस प्रकार अकित करने के कारण ही आज निबध वहाँ हल्के साहित्य (लाइट लिटरेचर) के रूप मे गृहीत होता है, जो अपने यहाँ के निबध के रूप से बिल्कुल भिन्न है। हम निबन्ध को हल्के साहित्य के रूप मे घोषित नही करते। निबध को इस प्रकार हल्कापन दे देने के कारण इसे वे लोग कहानी, एकाकी नाटक तथा प्रगीत मुक्तक (लीरिक) के समकक्ष रखते है—सभवतः पाठक के पक्ष को दृष्टि मे रखकर। लेखक का पक्ष तो अवश्य ही कुछ दुष्कर है, चाहे हम उपर्युक्त साहित्य के अगों को किसी भी रूप में ग्रहण करें। वैयक्तिक निबधो को प्रगीत मुक्तक की कोटि मे रखने का प्रधान कारण यह है कि इन निबंधो मे भाषा की काव्यात्मक वा भावात्मक शैली का होना भी आवश्यक माना गया है।

निबध के रूप-दर्शन को लेकर दो और तत्त्वो की मीमासा पश्चिम तथा पूरब मे भी विशेष होती है; इन तत्त्वो का संबंध भी उसके अतरंग से ही है। ये तत्त्व हैं हास्य-व्यंग्य-विनोद और व्यक्तित्व के। निबध मे हास्य-व्यंग्य-विनोद का सविधान आवश्यक है। निबध में इनका समावेश साभिप्राय है—विशेषतः निबंध के भारतीय रूप की दृष्टि से। हम निबध मे बुद्धि की प्रधानता स्वीकार करते है और यह निश्चित है कि यदि आद्योपान्त विचारो का ही प्रतिपादन निबध में किया जाय, बीच-बीच मे श्रोता वा पाठक के बुद्धिश्रम को दूर करने पर निबंधकार की दृष्टि न जाय तो निबंध वस्तुतः एक रूक्ष रचना प्रतीत होगा। और ऐसी आवस्था मे निबंधकार को भी विशेष श्रम का अनुभव होगा। अतः कर्त्ता तथा बोधक दोनों के बुद्धिश्रम के परिहार के हेतु निबध में हास्य-व्यग्य तथा विनोद की सस्थिति आवश्यक प्रतीत होती है। अँगरेजी-साहित्य मे निबध मे इस तत्त्व की संस्थिति का संबध चाहे निबधकार के व्यक्तित्ववश अथवा परपरा से निबध मे इसकी नियोजनावश जोडी जाय, पर जो लोग निबध मे विचारात्मकता का होना आवश्यक स्वीकार करते हैं उनकी दृष्टि मे इस तत्त्व का उसमे होना अनिवार्य है। हिंदी के श्रेष्ठ निबधकार श्रीबालकृष्ण भट्ट की धारणा भी इस विषय मे ऐसी ही है—

रसिक पढ़नेवाले हास्य रस पर अधिक टूटते है। सच पूछो तो हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़ कुद की कली समान दॉत न खिल

उठे तो वह लेख ही क्या--हमारे संस्कृत साहित्य में तो वक्रोक्ति ही काव्य का जीवन माना गया है "वक्रोक्तिः काव्यजीवनम्" हास्य मे अवश्यमेव कुछ न कुछ वक्रोक्ति रहती ही है ।*

निबंध मे निबंधकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होनी आवश्यक है, इस विषय मे सभी समीक्षक एक मत है । जिस प्रकार साहित्य और देश-काल का संबंध अविच्छेद्य माना जाता है और जिस साहित्य मे देश-काल की झलक नहीं मिलती वह साहित्य की प्रगति से दूर फिका साहित्य समझा जाता है, उसी प्रकार साहित्य और व्यक्तित्व का संबंध भी अपरिहार्य है । किसी साहित्य-कर्ता की कृति से हम उसके व्यक्तित्व को अलग नहीं कर सकते । यहाँ व्यक्तित्व से हमारा अभिप्राय कर्ता की रुचि, उसके अध्ययन-मनन-चिंतन तथा उसके जीवनगत प्रकृति वा स्वभाव से है । साहित्यकार इनसे प्रेरित होकर ही अपनी साहित्य-रचना के लिए विषय का चुनाव करता है, इनसे प्रभावित होकर ही उसका (विषय का) प्रतिपादन करता है और इनकी पूरी छाप उस पर लग जाती है । यदि व्यक्तित्व का तात्पर्य यही है तो साहित्य के सभी अंगो पर साहित्यकार के व्यक्तित्व की मुद्रा लगी मिलेगी, उसके साहित्य को तो हम उससे अलग कर ही नहीं सकते । जब बात ऐसी है तब साहित्य के एक अंग निबंध मे कौन सुर्खाब का पर लगा है कि चारो ओर से इसमे व्यक्तित्व की निहिति के लिए चिल्लाहट सुनाई पडती है और वह किस ढंग का व्यक्तित्व है जो इसमें होना चाहिए ? यह एक समस्या है । निबंधकार की रुचि और प्रकृति तथा उसके अध्ययन-मनन-चिंतन से उसका निबंध शासित होता है, यह सत्य है । पर यह तो एक सामान्य तथ्य है । व्यक्तित्व के इन अवयवो मे भी कुछ विशिष्ट अवयव होते है, जो अपनी प्रधानता के कारण स्पष्ट रूप धारण कर लेते है और किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके अनेक अवयवों के होते हुए भी अपनी प्रधानता के कारण वे विशिष्ट अवयव ही उसके व्यक्तित्व की संज्ञा ग्रहण करते हैं । व्यक्तित्व के ये विशिष्ट अवयव, जो अपनी प्रधानता के कारण किसी व्यक्ति मे साफ साफ झलकते है, दो प्रकार के हो सकते हैं । एक प्रकृत और दूसरे अर्जित । व्यक्तित्व के प्रकृत अवयव से तात्पर्य है किसी व्यक्ति में जन्मतः ही किसी विशेष रुचि आदि का प्राधान्य । यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि व्यक्तित्व के प्रकृत अवयव का संबंध प्रायः भावों वा मनोविकारों से होता है । किसी व्यक्ति मे किसी विशिष्ट भाव का प्राधान्य होता है, जो प्रायः जन्मतः वा

---

* हिंदी प्रदीप, जिल्द २३, संख्या १।२।३। (सन् १९०० ई०)

प्रकृतितः ही देखा जाता है। व्यक्तित्व के अर्जित अवयव का अभिप्राय है किसी व्यक्ति द्वारा अध्ययन-मनन और चिंतन की उपलब्धिवश उसमे (व्यक्ति में) किसी विशिष्ट धारणा वा मान्यता की निहिति। इन्ही दो अवयवो से निर्मित व्यक्तित्व की निहिति—उस व्यक्तित्व की निहिति जिसे हम सामान्य मे भी विशेष कहते है—निबधकार के निबध मे होती है। किसी निबधकार के व्यक्तित्व मे किसी विशेष भाव वा मनोविकार का प्राधान्य होता है और इस स्थिति मे उसके निबन्ध मे भी उस भाव वा मनोविकार की नियोजना अवश्य ही हो जाती है, उस भाव के उसके व्यक्तित्व मे घुल-मिल जाने के कारण उसकी अभिव्यक्ति न हो सके यह असभव है। वह अपनी रचना मे ऐसे स्थलो की नियोजना अवश्य करेगा जो उसके व्यक्तित्व मे स्थित प्रमुख भाव के चित्रण के लिए पूर्ण अवकाश देगे। इसी प्रकार अध्ययन-मनन-चिंतन के कारण किसी निबध-कार की जो मान्यता वा दृष्टि निर्धारित हो चुकी है उसकी नियोजना भी उसके निबध मे अवश्य ही होगी, इसमे सदेह नहीं। वस्तुतः निबध में व्यक्तित्व की निहिति का अर्थ यही होना चाहिए। निबध मे व्यक्तित्व की निहिति का अर्थ जो लोग अभीष्ट विषय से बार-बार दूर उछलकर निबधकार के जीवन से सबद्ध घटना, वस्तु और व्यक्ति का स्मरण, कीर्तन और चित्रण मानते है उनकी दृष्टि फीकी मानी जा सकती है और उनकी मान्यता अगूढ। अँगरेजी-साहित्य मे वैयक्तिक निबध में व्यक्तित्व-चित्रण का अर्थ कुछ-कुछ इसी प्रकार का लिया जाता है।

निबध मे वैयक्तिक तत्त्व को लेकर एक प्रश्न और है। निबध में व्यक्तित्व का चित्रण कैसे हो ? विषयातर करके अथवा विषय से लगकर ? निबधकार को इतनी सुविधा तो मिलनी ही चाहिए कि वह व्यक्तित्व के चित्रण के लिए यथोचित स्थान पर विषयातर करे। पर, लबा-चौड़ा विषयातर करने का अधिकार सभवतः समीक्षक उसे न दे सके। वस्तुतः इस कार्य के हेतु निबध मे यदि विषयातर हो तो वह छोटा होना चाहिए और निबधकार के लिए यह उचित है कि वह अपने इस कार्य को कर तुरत अभीष्ट विषय पर आ जाय।

निबंध मे व्यक्तित्व की निहिति का एक दूसरा साधन उसकी शैली भी है। इस विषय मे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि शैली और व्यक्तित्व के घनिष्ठ सबध की चर्चा सभी पर विदित है।

निबध के रूप के अतरग तथा बहिरग-दर्शन की समाप्ति के पूर्व दो शब्द उसके रचना-कौशल पर भी कहने है। निबंध के आदि और अवसान में प्रभा-वात्मकता की निहिति, उसमें अभीष्ट विषय के प्रतिपादन की स्पष्टता और इस कार्य

की सिद्धि के लिए उसमे समुचित उद्धरण और उदाहरण की नियोजना की आवश्यकता पर सभी की दृष्टि जा सकती है। निबंध-रचना-कौशल के इन तत्त्वो की नियोजना निबंध में करते समय उसके रचयिता की दृष्टि इन्हे उसमे इस रूप से प्रतिष्ठित करने की होनी चाहिए कि इनके द्वारा रचना में बनावटीपन न आ जाय। अभिप्राय यह कि इनकी नियोजना मात्र के लिए उसकी दृष्टि इन पर न जानी चाहिए, और श्रेष्ठ निबंधकार वस्तुतः ऐसा करता भी नही है। इसकी चर्चा यहाँ इसलिए करनी पडी कि साहित्य का संबंध स्वाभाविकता से अति घनिष्ठ है। जिस साहित्य मे बनावटीपन है उसकी साहित्यिकता मे संदेह किया जा सकता है।

निबंध का यह आदर्श रूप-निर्धारण है। ऐसे निबंध साहित्य में कम मिलेंगे जिनमे ये सभी तत्त्व सनिविष्ट हों, और समुचित ढंग से सनिविष्ट हो। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनमे निबंध के उपर्युक्त तत्त्वो में से एकाध का नियोजना न हुई हो। कुछ ऐसी रचनाएँ भी दृष्टिगत होती हैं जिनमें निबंध की ही भाँति काया का विस्तार भी लघु होता है, और उनमें अभीष्ट विषय का प्रतिपादन भी कुशलतापूर्वक किया जाता है, पर निबंध के अन्य तत्त्व नही मिलते। आज साहित्य मे इस प्रकार की रचनाएँ भी प्रायः निबंध के नाम से अभिहित की जाती है। इन्हे निबंध की कोटि मे रखा जाय अथवा नही? यह तो सत्य है कि ऐसी रचनाएँ आदर्श निबंध की तुला पर नहीं तुल सकतीं। यदि इन्हे भी निबंध की कोटि में प्रतिष्ठित कर दिया जाय तो निश्चय ही निबंध का अपना सच्चा रूप-रंग कुछ फीका प्रतीत होगा। ऐसी स्थिति मे इनके लिए एक अलग कोटि का निर्धारण ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। प्रश्न है, इनकी कौन-सी कोटि हो और इन्हे नाम कौन-सा दिया जाय। कोटि की दृष्टि से इन्हे हम निबंध से नीची कोटि मे ही रखेंगे, अर्थात् द्वितीय कोटि मे; निबंध प्रथम कोटि की रचना होगी। अब, इन्हे क्या नाम दिया जाय, प्रश्न यह है। अँगरेजी मे जिसे 'एसे' कहते है और हिंदी मे 'निबंध' संस्कृत मे उसे प्रायः 'लेख्य', 'निबंध' और 'प्रबंध' नाम देते है, इसकी चर्चा थोड़ी-बहुत हो चुकी है। इसी प्रकार अँगरेजी मे जिसे 'कापोजीशन' कहते है संस्कृत में उसे प्रायः 'संग्रथ' और 'रचना'* नाम से अभिहित करते है। निबंध से नीची वा द्वितीय कोटि की रचना को, जिसका वर्णन ऊपर हुआ है, हम 'कापोजीशन', 'संग्रथ' वा 'रचना' नाम से पुकार सकते है। पर इन नामों को हिंदी मे ग्रहण करने मे बड़ी कठिनाई है।

* संक्षिप्त वस्तु रचना। —साहित्यदर्पण, ४२२।

अँगरेजी का शब्द हम ग्रहण ही नहीं कर सकते। यदि ऐसा करें तो हमारे प्राचीन और शिष्ट साहित्यिक हमें अपना तुंड ऊँचा-ऊँचा कर-कर गाली देना आरंभ कर देंगे! संस्कृत का 'सग्रंथ' शब्द स्पष्ट बोध नहीं कराता। अब रहा 'रचना' शब्द। इसके ग्रहण में भी कठिनाई है, क्योंकि इसके द्वारा गद्य पद्यमयी सभी साहित्यिक कृतियों का बोध होता है। अतः उपर्युक्त प्रकार की रचना के लिए यह शब्द भी ग्राह्य नहीं। ये सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ, यदि इस प्रकार की रचना के लिए 'लेख' शब्द का ग्रहण कर लिया जाय, क्योंकि कोई दूसरा प्रशस्त मार्ग नहीं दृष्टिगोचर होता। यद्यपि यह शब्द बड़ा व्यापक है और 'निबंध' 'प्रबंध' सभी प्रकार की रचनाओं के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होता है तथापि भेदीकरण के लिए हम इसका प्रयोग कर सकते हैं। तो निबंध के समान ही विस्तार में छोटी, अभीष्ट विषय के प्रतिपादन से युक्त तथा विषय के प्रतिपादन में ग्रथन-कौशल से परिपूर्ण रचना को हम 'लेख' शब्द द्वारा अभिहित करें, तो कोई हानि नहीं। इस प्रकार की रचना द्वितीय कोटि की मानी जायगी, क्योंकि आदर्श निबंध के अन्य तत्त्व इसमें संभवतः न मिल सकेंगे। यहाँ एक बात कहनी है—वह यह कि 'लेख' भी 'निबंध' की जाति की ही रचना समझी जानी चाहिए, यद्यपि उसकी कोटि निम्न अवश्य है। निबंध की व्यापकता के लिए ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है। यदि ऐसा न किया जायगा तो साहित्य में निबंध की संख्या अँगुलियों पर गिनने योग्य ही होगी।

हिंदी-साहित्य के गद्य के क्षेत्र में 'प्रबंध' उस प्रकार की रचना को कहा जाता है जिस प्रकार की रचना को अँगरेजी में 'थीसिस' या 'ट्रीटाइज़' कहते हैं। यह बहुत विस्तृत रचना होती है, 'प्र' उपसर्ग 'विस्तार' या 'सर्वतोभाव' का बोधक है ही। इसमें विषय का ही प्राधान्य होता है, जिसमें रचयिता प्रायः गवेषणापूर्ण तथ्यों का संनिवेश करता है। इस प्रकार विषय की प्रधानता मात्र तथा गवेषणात्मकता के कारण प्रबंध में नीरसता और रूक्षता आ सकती है, और प्रायः ऐसा देखा भी जाता है। विषय के प्रतिपादन की स्पष्टता, ग्रथन-कौशल आदि का समावेश इसमें भी होना आवश्यक माना जा सकता है। इन तत्त्वों से परिपूर्ण 'प्रबंध' की वस्तुतः अपनी अलग सत्ता है, और उसे इसी रूप में देखना चाहिए। निबंध से इसका संबंध जोड़ना उचित नहीं। इसका क्षेत्र ही अलग है।

निबंध को लेकर रूप और नाम की चर्चा हुई, अब भेद की चर्चा शेष है। विषय को दृष्टि-पथ में रख यदि निबंध के भेद किए जायँ तो उसके अनेक भेद हो सकते हैं, उतने भेद जितने विषय हैं। और, सच्चे तथा अच्छे निबंधकार

के हाथ में पडकर किसी भी विषय पर सत् निबध प्रस्तुत हो सकता है। पर ऐसी स्थिति मे जैसे विषय की सीमा नहीं—वस्तुतः इस अनेक रूपात्मक जगत् मे विषय निस्सीम हैं—वैसे ही निबध के भेदों की भी सीमा न रहेगी। अभिप्राय यह कि इस प्रकार निबधो का कोई सुविधाजनक विभाजन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति-शैली वा रचना प्रस्तुत करने की पद्धति पर यदि दृष्टि रखकर निबधों के भेद निर्धारित किए जायें तो सामान्यतः उसके पाँच भेद स्थापित किए जा सकते है—(१) विचारात्मक, (२) भावात्मक, (३) आत्मव्यजक, (४) वर्णनात्मक और (५) कथात्मक। निबध की इन अभिव्यक्ति-शैलियो मे से किसी एक का ग्रहण निबधकार की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। इन्ही से शासित होकर ही वह कोई शैली ग्रहण कर निबध-रचना करता है। विभिन्न शिक्षा-दीक्षा, रुचि और व्यक्तित्व से सपन्न निबधकार 'साहित्य' विषय पर निबध प्रस्तुत करते समय उपर्युक्त विभिन्न शैलियों का ग्रहण कर सकते है। 'साहित्य' पर निबध प्रस्तुत करने के लिए कोई विचारात्मक, कोई भावात्मक, कोई आत्मव्यजक, कोई वर्णनात्मक और कोई कथात्मक शैली का ग्रहण कर सकता है। और, यह सत्य है कि इस विषय पर उपर्युक्त पाँचों पद्धतियों द्वारा निबध प्रस्तुत किया जा सकता है।

मानवस्थित बुद्धि और हृदय का—विचार और भाव का—उपयोग उसके जीवन के सभी क्षेत्रों मे होता है। साहित्य-क्षेत्र में भी यह बात लागू है। वस्तुतः साहित्य बुद्धि और हृदय का ही व्यापार है, ऐसा व्यापार जिसमे ये दोनों—बुद्धि और हृदय—अन्योन्याश्रित और समिश्रित है। हाँ, यह सत्य है कि साहित्य के अगो मे हृदय की ही प्रधानता है, उसके ऐसे अग कम है जिनमे बुद्धि की प्रधानता हो। निबंध मे बुद्धि की ही प्रधानता है, यह हम पर विदित है। पर, इसका तात्पर्य यह तो नहीं समझा जाता कि निबध मे हृदय का कोई उपयोग ही नही है। भावात्मक निबधो मे तो हृदय की प्रधानता वैसे ही स्वीकृत कर ली गई है जैसे विचारात्मक निबधों मे विचार वा बुद्धि की प्रधानता। हृदय का उपयोग भी इसमे होता है, पर गौणतः। अभिप्राय यह कि विचारात्मक और भावात्मक निबधों मे विचारों और भावो की प्रधानता रहती है, इनमे गौणतः भाव और विचार भी रहते ही हैं। इसकी चर्चा प्रायः होती है कि साहित्य हृदयप्रधान वस्तु है। पर उसकी हृदयप्रधान भूमि मे बुद्धि की आवश्यक पतली-क्षीण धारा भी प्रवाहित ही रहती है। बात यह है कि बिना बुद्धि से शासित हृदय तो बावला कहा जायगा, जैसे बिना रीढ के शरीर निकम्मा। हम कहना यह चाहते है कि साहित्य के जो अग बुद्धिप्रधान है उनकी तो कोई

बात नहीं, जो हृदयप्रधान है, उनमें भी बुद्धि अपेक्षित है। भावात्मक निबंधों में यह आवश्यक है कि उनमे भाव बुद्धि से शासित हों। इस प्रकार विचारात्मक और भावात्मक दोनों निबधों में विचार-धारा की आवश्यकता लक्षित होती है। विचार-धारा की पीनता और क्षीणता इनमें अवश्य होगी।

विचारात्मक तथा भावात्मक निबधों पर इस प्रकार विचार करने पर तो यह स्पष्ट : लक्षित होता है कि इनका विभाजन मानवस्थित बुद्धि और हृदय के आधार पर है। तो इन्हे भी शैली के आधार पर विभाजित क्यो माना जाय? इनके विभाजन का आधार बुद्धि और हृदय अवश्य है और यह ठोस आधार है। पर सुविधा के लिए शैली के आधार पर ही इनका विभाजन इसलिए किया गया है कि निबधकार की शिक्षा-दीक्षा, रुचि और व्यक्तित्व के कारण एक ही विषय पर विचारात्मक निबध भी प्रस्तुत किया जा सकता है और भावात्मक निबध भी। 'काव्य' पर विचारात्मक निबध भी मिलते है और भावात्मक निबध भी। एक ही विषय पर दो प्रकार के निबधों के प्रस्तुत होने का कारण स्पष्टतः तो निबधकारों द्वारा गृहीत दो शैलियाँ ही है। बात यह है कि समग्र रूप से साहित्य भी किसी वस्तु को प्रस्तुत करने की शैली ही है, जिसमें उसकी (साहित्य की) अभिव्यक्ति की साधिका भाषा की श्रेष्ठ शक्तियों का विशेष हाथ होता है। फतेहपुर सीकरी पर लिखी रचना ऐतिहासिक प्रबध भी हो सकती है और साहित्यिक निबध भी। वस्तुतः प्रस्तुत करने की शैली के भेद के ही कारण कोई वस्तु साहित्यिक हो जाती है और कोई असाहित्यिक वा शास्त्रीय।

वर्गीकरण के आधार की दृष्टि से आत्मव्यंजक निबधों के विषय में भी वही बात समझनी चाहिए जो विचारात्मक तथा भावात्मक निबधों के लिए कही गई है। अर्थात् निबधो मे आत्मव्यजकता की निहिति भी अभिव्यक्ति-शैली पर ही निर्भर है। इस प्रकार के निबधों में निबधकार की दृष्टि किसी तथ्य को स्पष्ट और प्रतिपादित करने की ओर तो होती है—निबध में इसका होना तो आवश्यक माना ही गया है—साथ ही ऐसे निबधो मे निबंधकार की रुचि, प्रवृत्ति और उसके व्यक्तित्व की व्यजना विशेष होती है—निबधकार विषय को प्रतिपादित करने की ऐसी शैली ही ग्रहण करता है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के कुछ निबध आत्मव्यजक निबध के अच्छे उदाहरण है।

वर्णनात्मक और कथात्मक निबधो का संबध स्पष्टतः रचना-शैली से है, इसमे संदेह नहीं। वर्णनात्मक निबध में निबधकार की वृत्ति वर्णन करते समय प्रायः हृदय की ओर जाती हुई विशेष लक्षित होती है। इस प्रकार के निबंध में हृदय वर्ण्य विषय मे रमता चलता है। वर्णन और रमणीयता का

घनिष्ठ संबध है भी। विचारात्मक निबध मे वृत्ति विषय के प्रतिपादन की ओर होती है। बुद्धि-व्यापार इसमे विशेष होता है। पर, विचार करने पर लक्षित होगा कि वर्णनात्मक निबध मे विचारात्मकता का अभाव वा निषेध नहीं रहता। इसमें भी विचारात्मकता होती है—प्राय आरम्भ मे विषय की प्रस्थापना करते समय।

कथा साहित्य को व्यक्त करने की एक शैली है। कथात्मक निबंध में तथ्य के प्रतिपादन के लिए कथा का आधार मात्र लिया जाता है, जैसे विचारात्मक निबध मे उसके प्रतिपादन के लिए उदाहरण का। इस प्रकार हम देखते है कि कथात्मक निबध भी तथ्य वा विचार से अलग नहीं किया जा सकता—निबध का जो मूलभूत तत्त्व है।

निबधो के भेद की मीमासा करते समय हमारी दृष्टि इनमे विचारात्मकता की प्रधानता लक्षित कराने की ओर भी रही है। निबध साहित्य का बुद्धि-प्रधान अग है, यह हम निर्णीत कर चुके है। निबधो में भावात्मकता की प्रधानता पर भी हमारी दृष्टि जाती है। पर वहाँ भी हम देखते है कि विचारात्मकता से भावात्मकता का कोई विरोध नहीं है। विचारात्मकता वहाँ भी विद्यमान है—चाहे अल्पतः ही सही। ऐसी स्थिति मे यदि मानवस्थित बुद्धि और हृदय पर लक्ष्य करके निबधों का भेद स्थापित किया जाय तो निबध के दो ही प्रकार प्रतिष्ठित किए जा सकते है—विचारात्मक और भावात्मक। क्योंकि शैली के आधार पर निर्धारित निबंध के भेदों मे भी तो विचार और भाव ही रहते है—किसी भेद मे विचार की प्रधानता रहती है, किसी भेद में भाव की। और सूक्ष्मतः विचार किया जाय तो विदित होगा कि निबंध के भावप्रधान भेदो मे भी विचार की आवश्यकता अपेक्षित है।

साहित्य शास्त्र और दर्शन से प्रभावित होता है, और साहित्य के अंग भी एक दूसरे से प्रभावित होते है। ऐसी स्थिति में स्मरण रखने की बात यह है कि जो वस्तु जहाँ जाती है वह वहीं की होकर रह सकती है। दूसरे क्षेत्र से कोई वस्तु साहित्य के क्षेत्र मे जायगी, तो उसे साहित्य के शासन मे चलना और रहना होगा, वह उद्दड होकर साहित्य पर अपना रोब गालिब नहीं कर सकती। और दूसरे क्षेत्र से आई वस्तुअ पर साहित्य भी यदि शासन नहीं कर सकता, यदि वह उन्हें अपने अनुकूल कर अपने रग मे रँग नहीं सकता, यदि वह उन्हें मनमानी करने देता है, तो यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे साहित्य मे कोई शक्ति नहीं है, ऐसा साहित्य नपुंसक है, ऐसा साहित्य साहित्य नहीं है। तात्पर्य यह कि शास्त्र और दर्शन को साहित्य मे आकर साहित्य का ही होकर रहना

होगा, और साहित्य मे भी इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह इन्हें साहित्य का बनाकर रख सके। साहित्य का एक अग निबध भी अन्य शास्त्र से प्रभावित है, विशेषत: तर्क और मीमासा से। पर निबंध तर्क और मीमासा नही है, इसमे उनकी प्रतिपादन-पद्धति का ही ग्रहण किया गया है, वह भी अपने ढग से। अभिप्राय यह कि तर्क और मीमासा से प्रेरणा ग्रहण कर निबध ने उन्हें अपने मे मिला लिया है, अपने अनुकूल बना लिया है। उसने इन्हें तर्क और मीमासा-शास्त्र के रूप मे नही, प्रत्युत साहित्य के रूप मे ग्रहण किया है। यह विवेचना विचारात्मक निबधों की दृष्टि से विशेष उपयुक्त प्रतीत होती है।

इसी प्रकार निबंध के कुछ भेद साहित्य के अन्य अंगो से भी प्रेरणा ग्रहण करते हुए दिखाई पडते है। जैसे, भावात्मक तथा वर्णनात्मक निबंध काव्य से प्रभावित दृष्टिगत होते है और कथात्मक निबध उपन्यास, कहानी तथा नाटक से। भावात्मक निबधो मे काव्यात्मकता तथा भावात्मक शैली और वर्णनात्मक निबधों मे वृत्ति का हृदय की ओर जाकर रमणीय वर्णन प्रस्तुत करना काव्य से ही आया हुआ जान पड़ता है। वर्णन का तत्त्व वस्तुतः काव्य का ही तत्त्व है। भावात्मक निबधो में काव्य का रूप स्पष्टतः काव्य-क्षेत्र से आया हुआ जान पड़ता है।

यहाँ हमें यह भी कहना है कि गद्यकाव्य भी भावात्मक निबध के अतगत ही आता है। भावात्मक निबध का यह छोटा रूप है। दोनो मे कुछ भेद भी अवश्य है, पर उतना अधिक नहीं। इन दोनों प्रकार की रचनाओ को देखने से विदित होता है कि भावात्मक निबध मे रचयिता की दृष्टि विषय के प्रतिपादन पर रहती है और गद्यकाव्य मे मन को रमाने पर। इसमे प्रतिपादन की निहिति नहीं लक्षित होती।

कथात्मक निबंधों मे कथा-साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है।

बाह्यातर दोनों रूपों पर दृष्टि रख कर विचार करने से विदित होता है कि निबध और आलोचना मे अनेक अशों मे साम्य है। दोनो के बाह्य रूप-रग समान है। दोनों मे रचयिता की दृष्टि अभीष्ट विषय के स्पष्टीकरण तथा प्रतिपादन की ओर होती है। निबध के कुछ अन्य तत्त्व—विशेषतः हास्य-व्यग्य और विनोद—भी श्रेष्ठ और शिष्ट आलोचना में देखे जाते है। व्यक्ति-तत्त्व भी यदा-कदा मिल ही जाता है। निष्कर्ष यह कि विचारात्मक निबंधो तथा आलोचना में विशेष साम्य जान पड़ता है। तो, क्या ये दोनों एक ही है? हाँ, शैली की दृष्टि से तो ये एक ही प्रतीत होते है। विशेषतः वह आलोचना तो निबंध के समान ही जान पड़ती है जो निबधो के ही रूप मे लिखी गई है। निबध

की स्वतंत्र सत्ता की चर्चा हो चुकी है। पर, विषय की दृष्टि से ये दो है। निबंध के विषय साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक आदि अनेक हो सकते है, जिन्हें साहित्य के आवरण में रखा जाता है। पर, आलोचना का विषय एक ही है—केवल साहित्यिक। निबंध मे साहित्य, धर्म, समाज, जीवन आदि अनेक की मीमासा हो सकती है, पर आलोचना मे केवल साहित्य की मीमासा। इसमें भी जीवन, समाज, धर्म, दर्शन आदि आएँगे पर साहित्य की मीमासा के—आलोचना के—सहायक होकर। अभिप्राय यह कि आलोचना का एक मात्र क्षेत्र—विषय की दृष्टि से—साहित्य है और निबंध का क्षेत्र अति व्यापक है। इस प्रकार निबंध और आलोचना एक ही जाति के स्थिर होते है, यद्यपि दोनो का कार्य भिन्न-भिन्न है।

निबंध को दृष्टि-पथ मे रखते हुए विचारणीय वह विषय भी है जिसके द्वारा साहित्य साहित्यकार की ही वस्तु न रहकर साहित्यज्ञों—साहित्यिक लोक वा जनता—की भी वस्तु बनता है, जिसके द्वारा साहित्य की आनदानुभूति साहित्यकार ही नही, प्रत्युत श्रोता, पाठक और दर्शक भी करता है। साहित्य की सार्थकता भी इसीमें है कि वह साहित्यकार से चलकर साहित्य के रसिको को भी रसास्वादन कराए। साहित्य अरण्य-रोदन नही है। इसे अरण्य-रोदन समझने और समझानेवालों का युग अब लद चुका है। अभिप्राय यह कि साहित्य मे प्रेषणीयता होनी चाहिए। प्रेषणशक्ति का अधारणकर्ता साहित्य सभवतः साहित्य न कहा जायगा और जिस साहित्य मे जितनी अधिक प्रेषणीयता होती है वह उतना ही श्रेष्ठ कोटि का स्वीकृत किया जाता है। साहित्य की इस महत्त्वशील प्रेषणशक्ति ने तो उसके (साहित्य के) आधे—और अत्यन्त आवश्यक—अग पर अधिकार ही जमा रखा है। साहित्य के बाह्याग का, जिसे कला-पक्ष भी कह सकते हैं, संबंध इस प्रेषणशक्ति से ही है। इसे यों कहें कि साहित्य का बाह्याग प्रेषण का साधन है। साहित्य के इस अंग की महत्ता पर किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। इसकी महत्ता और आवश्यकता उसके अंतरंग से किसी प्रकार कम नहीं, जिसका संबंध भाव, अनुभूति आदि से है। कहना तो यह चाहिए कि अतरग की अपेक्षा बाह्याग की महत्ता किन्हीं दृष्टियों से अधिक है। साहित्यकार लाख-लाख भाव, अनुभूति आदि को लेकर ही क्या करेगा यदि वह इन्हें समुचित रूप न दे सकेगा—साहित्य के बाह्यांग द्वारा साहित्य का अंतरंग (भाव, अनुभूति आदि) वा उसकी आत्मा का महत्त्व तो तभी न है जब वह साहित्य के शरीर के माध्यम से व्यक्त हो, बिना शरीर के आत्मा कहाँ टिकेगी। और साहित्य का शरीर उसका बाह्याग—कलापक्ष—है।

इस प्रकार साहित्य के बाह्याग का बडा महत्त्व स्थापित होता है। साहित्य अपने बाह्याग को लेकर ही श्रोता, पाठक वा दर्शक के संमुख उपस्थित होता है और तत्पश्चात् अपनी आत्मा का प्रकाश उन्हे देता है। निष्कर्ष यह कि साहित्य बाह्याग द्वारा ही श्रोता, पाठक वा दर्शक तक पहुँचने की शक्ति ग्रहण करता है। अर्थात् प्रेषण का साधन साहित्य का बाह्याग ही है। साहित्य के बाह्याग के निर्माण का मूल तत्त्व है शब्दमय भाषा। साहित्यकार मे भाव, अनुभूति आदि की सस्थिति के पश्चात् इन्हें अभिव्यक्त करने के लिए भाषा की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। बिना भाषा के वह कुछ कर ही नहीं सकता। पर, साहित्य की सृष्टि के लिए केवल भाषा का होना ही अलम् नहीं है। भाषा की प्राप्ति के साथ ही साहित्यकार मे उस शक्ति की भी अपेक्षा प्रतीत होती है, जिसके द्वारा वह वर्ण्य को इस ढग से अभिव्यक्त करता है कि श्रोता, पाठक वा दर्शक उसके साहित्य से स्वतः—साहित्य के ग्रहण की इच्छा न रहने पर भी—प्रभावित होता है। साहित्यकार की इस शक्ति का संबध शैली से है, जो (शैली) कथन की प्रणाली मात्र है। पर ऐसी प्रणाली जो श्रोता, पाठक वा दर्शक पर प्रभाव डालने मे पूर्ण समर्थ होती है। प्रभाव डालने मे समर्थ कथन-प्रणाली ही शैली की सीमा मे आ सकती है, इस तथ्य पर ध्यान जाना आवश्यक है। किसी बात को टेढ़े-सीधे ढंग से तो सभी कह लेते है। कथन-प्रणाली मे इसी विशिष्टता के कारण शैलीकार की श्रेणी मे कम ही रचयिता आ पाते है। और, शैली के इस आदर्श के कारण शैलीकार की दृष्टि केवल भाषा पर ही नहीं रहती है, वह उसकी शक्तियो और रीतियो तथा उसके गुणो और अलंकारों तक भी जाती है। भाषा के इन सभी तत्त्वों के साहाय्य से वह अपनी शैली मे प्रभावात्मकता की निहिति करता है। और, शैली के इसी आदर्श के कारण शैलीकार की दृष्टि शब्द, भाषा के चरमावयव वाक्य पर भी रहती है। वह कथन मे प्रभाव लाने के लिए प्रसगानुकूल वाक्यो के पदो की नियोजना में परिवर्तन करता है, उनकी गति मे आरोह और अवरोह लाता है। भाषा में मुहावरेदानी तथा लोकोक्तियो आदि का संनिवेश प्रभाव डालने के लिए ही होता है। शैली के आदर्श को दृष्टि पथ मे रखकर शैलीकार उसमे इन तत्त्वो की संस्थापना करता है। शैली के इन तत्त्वों का आगमन शैलीकार—जो साहित्यकार ही होता है—की शैली मे उसके व्यक्तित्व से शासित होकर आते है। शैली और शैलीकार के व्यक्तित्व का घनिष्ठ सबंध है। शैलीकार की रुचि, प्रवृत्ति, शिक्षा-दीक्षा आदि उसकी शैली मे अवश्यमेव प्रतिफलित होती दिखाई पड़ती है। स्मरण रखने की बात यह है कि शैली में शैलीकार का व्यक्तित्व साहित्य के

अंतरंग से भासित होता हुआ ही आएगा। इस प्रकार शैली का संबंध साहित्य के बाह्यांग से तो लगा दिखाई ही पडता है, उसके अंतरंग से भी वह जुड़ा लक्षित होता है।

साहित्य के एक अंग निबंध में भी शैली की अपेक्षा है और निबंध-रचना की सफलता उसमे निहित शैली की सफलता पर निर्भर है, क्योंकि प्रभावात्मकता की नियोजना तो निबंध में भी होनी ही चाहिए और साहित्य के इस तत्त्व का (प्रभावात्मकता का) संबंध शैली से ही है। निबंध के सभी भेदों में उल्लिखित शैली के सभी तत्त्वों की नियोजना निबंधकार यथाप्रसंग कर सकता है। पर इनकी नियोजना में निबंध के भेद के अनुकूल न्यूनाधिक्य अवश्य होगा। जैसे, शैली का अलंकार-पक्ष, जिसके अंतर्गत भाषा की शक्ति, रीति, गुण, अलंकार आदि सभी हम लेते है, विचारात्मक, आत्मव्यंजक तथा कथात्मक निबंधो मे उतनी सुविधापूर्वक नहीं लाया जा सकता जितनी सुविधापूर्वक वर्णनात्मक तथा भावात्मक निबंधों मे लाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि निबंध के इन भेदों का संबंध काव्य-तत्त्व से विशेष है और भाषागत अलंकारों की नियोजना काव्य मे ही सुगम है। प्रायः देखने मे यह आता है कि निबंध के जिन भेदों में शैलीगत अलंकार-तत्त्व का समावेश विशेष होता है, उनमे व्यक्ति-तत्त्व की झलक कम मिल पाती है। और विचारात्मक तथा आत्मव्यंजक और कथात्मक निबंधों मे, जिनमे भाषा के अलंकार-तत्त्व की नियोजना के लिए स्थान विरल मिलता है, व्यक्ति-तत्त्व की झलक स्पष्टतः लक्षित होती है। यहाँ व्यक्ति-तत्त्व से तात्पर्य निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व से है, जिसका आभास भाषा शैली के माध्यम से निबंधो मे प्राप्त होता है। वस्तुतः निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व तथा भाषा-शैलीगत व्यक्ति-तत्त्व मे किन्हीं अंशो मे कुछ विशेष भेद नहीं जान पडता। निबंधगत व्यक्ति-तत्त्व भाषा-शैली द्वारा व्यक्त होकर शैलीगत व्यक्ति-तत्त्व का नाम धारण कर लेता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व से संबद्ध हास्य-व्यंग्य-विनोद उनकी भाषा-शैली द्वारा प्रकाशित होकर उनकी शैली के व्यक्ति-तत्त्व (अर्थात् हास्य-व्यंग्य-विनोद) की अभिधा धारण करता है। सच तो यह है कि निबंधकार के जिस व्यक्तित्व का प्रभाव उसके निबंध पर पडता है उसी व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी भाषा-शैली पर भी। व्यक्तित्व एक ही है, स्थान या क्षेत्र दो है, जिन पर उस (व्यक्तित्व) का प्रभाव पड़ता है।

२

आरंभ

हिंदी-साहित्य मे निबंधो के निर्माण की अटूट परंपरा यद्यपि भारतेंदु-युग से चली तथापि इस (निबंध) की रचना का आरंभ उपर्युक्त युग के लगभग सौ वर्ष पूर्व ही हो गया था; और निबंध-रचना के आरंभकर्ता थे श्रीसदासुखलाल 'सुखसागर'* (सं० १८०३–१८८१), जिनका फारसी उपनाम 'नियाज'† था। हिंदी खडी बोली गद्य को शक्ति प्रदान करनेवालो मे भी इनका विशेष हाथ था, यह सभी पर विदित है।

हिंदी मे श्रीसदासुखलाल के विषय मे जो अनुसंधान कार्य हुआ वह पूर्णत: लोगों के समुख नही आ सका। उनकी दो-चार रचनाएँ ही सबके सामने आईं, यद्यपि अनुसंधानकर्ताओ का कथन है कि "इन्होने बहुत से लेख लिखे है।"†† उन लोगो ने यह भी कहा कि "हो सकेगा तो इनके लेखो का संग्रह पुस्तकाकार निकाला जायगा।" पर उन अनुसंधानकर्ताओं द्वारा यह कार्य न हुआ, और पता नहीं अब श्रीसदासुखलाल की उपर्युक्त सामग्री प्राप्त हो सकेगी अथवा नही।

---

* श्रीसदासुखलाल के संबंध मे यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने 'सुखसागर' ग्रंथ की रचना की है। पर बात ऐसी नहीं है। वस्तुतः उनका उपनाम 'सुखसागर' था। 'सुखसागर' नाम का कोई साहित्यिक ग्रंथ हिंदी मे नहीं मिलता। उनके संबंध में इस गडबडी का कारण हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की नोटिस लेने और उसे समझने-बूझने मे असावधानी जान पड़ती है।

† कुछ लोगो का कथन है कि श्रीसदासुखलाल का फारसी उपनाम 'निसार' था।

†† देखिए श्रीलाला भगवानदीन और श्रीरामदास गौड़ द्वारा संगृहीत 'हिंदी-भाषा-सार', पहला भाग, वक्तव्य, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५।

श्रीसदासुखलाल की जो दो-चार रचनाएँ हमारे समुख है उनमे 'सुरासुर निर्णय' प्रधान है। यह एक निबंध है और सर्वप्रथम इसके दर्शन श्रीलाला भगवानदीन तथा श्रीरामदास गौड द्वारा सगृहीत हिंदी-भाषा-सार' मे हुए। इस निबध का रचना-काल सं० १८३९-४० के बीच माना जा सकता है। "इस लेख म तिथि वा संवत् तो नही लिखा है परंतु जिन लेखो के बीच मे यह है उनमे सं० १८३९-४० का समय दिया हुआ है।"* ऐसी स्थिति मे हम हिंदी मे निबध-रचना का आरम स० १८३६-४० से मान सकते है।

इतनी थोडी सामग्री की प्राप्ति के आधार पर इस प्रकार के निर्णय के विषय में किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए। कारण यह है कि थोडी और छोटी वस्तु का भी महत्त्व देश-काल को दृष्टि-पथ मे रखकर देखने से विशेष प्रतीत होता है। फिर, श्रीसदासुखलाल के विषय मे इस प्रकार के निर्णय मे तो कोई आपत्तिजनक प्रसंग छेडा ही नहीं जा सकता, क्योकि इसकी सूचना हमे मिल चुकी है कि उन्होने बहुत से निबध लिखे है, यह बात दूसरी है कि वे सब निबध हमारे सामने नहीं है। खडी बोली हिंदी का मूल ढूँढ़ने हम प्राकृत-काल तक जाते है। इस विषय मे कैसी और कितनी सामग्री मिलती है, यह किसी से छिपा नही है। फिर भी जो कुछ और जैसी भी सामग्री मिलती है उसे हम महत्त्व देते ही है। ऐसी स्थिति मे श्रीसदासुखलाल के निबधो के विषय में प्राप्त सामग्री पर इस प्रकार की चर्चा औचित्य को सीमा के बाहर की वस्तु नहीं है।

विक्रम की उन्नीसवीं शती के मध्य के कुछ पूर्व ही खड़ी बोली हिंदी की शक्तिमती वाणी मे निबंध का प्रस्तुत होना हम एक विशेष घटना स्वीकार करते है और इस घटना की विशेषता तब और बढ़ जाती है जब हमे विदित होता है कि यह निबध निबध लिखने के लक्ष्य को ही लेकर लिखा गया था। अर्थात् सुरासुर-निर्णय का प्रतिपादन करने के लिए ही यह रचना छोटी सीमा में प्रस्तुत की गई है। इसके आदि और अंत के अंशो को देखने से यह बात स्पष्ट है। आदि का अश—

प्रसिद्ध योनि है। सुर देवता, असुर दैत्य, सज्ञा है। जो कहिए असुर दैत्य है, इस बात मे दूषण है। कंस दैत्य न था, मनुष्य था, श्रीकृष्ण का मामा, उग्रसेन का बेटा था। तो इससे समझिए कि स्वभाव असुर है, मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय।

---

* वही।

अंत का अंश—

राजा छत्री होय कि अथवा म्लेच्छ, तम नहीं किया होय और आप संत ज्ञानी सेवी होय, वह निःसंदेह मुक्त रूप है इसमे कोई संदेह नहीं। सो इस खोटे काल मे न कोई ब्राह्मण ही ऐसा है, न कोई छत्री ही वैसा है, केवल अमावस की रैन का अंधकार। यह अभागा काल हमारी लूट मे है। जो हरि ही की दया होय तो हम सब जो है तिनका उद्धार होय, नहीं तो न हम इस योग्य हैं कि उनकी टहल करे और न वे ऐसे है जो हम से लूलों, लँगड़ों को बाँह पकड़कर पार उतारें। देखिए हरि इच्छा क्या है। समय आन पहुँचा और यहाँ आसरे हरि के। और कोई अवलंबन आसरा नहीं है। बहकावने वाले बहुत हैं। नमो सच्चिदानंद।

इन उद्धरणो से विदित होता है कि विषय का आरभ कर उसका अत निबंध की छोटी सीमा के अतर्गत ही कर दिया गया है।

श्रीसदासुखलाल के 'सुरासुर-निर्णय' मे यद्यपि निबंध के सभी तत्त्व विद्यमान नहीं है तथापि वह विवेचन-पद्धति आदि की शिष्टता के कारण निबंध की श्रेणी मे ही प्रतिष्ठित होगा। इसमे एक स्थान पर निबधकार के निर्भीक व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है—

यद्यपि ऐसे विचार से हमे लोग नास्तिक कहेगे, हमे इस बात का डर नहीं, जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने।

निबंध के विषय द्वारा भी उनके व्यक्तित्व के बारे मे कुछ निर्णय किया जा सकता है। निबध का विषय धार्मिक वा पौराणिक है, इससे प्रतीत होता है कि श्रीसदासुखलाल की प्रवृत्ति धर्म वा भक्ति की ओर थी। उस समय गद्य के क्षेत्र मे जितने व्यक्ति काम करनेवाले थे सभी की दृष्टि इसी विषय की ओर थी। इसके अतिरिक्त इसका भी स्मरण रखना आवश्यक है कि उस समय हिंदी-साहित्य में धर्म वा भक्ति का प्राधान्य था—देश-काल की परिस्थितिवश। फिर भी अपने निबंध के लिए धार्मिक विषय को ही चुनना निबधकार की धर्म की ओर उन्मुख रुचि का आभास देता है। निबंध में एक स्थान पर हलका-सा व्यग्य भी मिलता है। जैसे—

ब्रह्मा के यहाँ से किसी को चिट्ठी पत्री नहीं लिखी आई है कि वह ब्राह्मण है और यह चांडाल है।

'सुरासुर-निर्णय' का विषय धार्मिक है। निबंधगत तथ्य वा प्रतिपाद्य की स्पष्टता के लिए जितने उदाहरण दिए गए हैं वे सभी पुराण से संबंध रखते है।

निबध का प्रतिपाद्य है सुर और असुर का निर्णय। इस निर्णय के लिए निबध-कार 'योनि' वा जन्म का अवलबन नही करना चाहता, प्रत्युत स्वभाव वा कर्म का आधार लेना चाहता है। उसकी धारणा यह है कि कोई व्यक्ति 'स्वभाव' (आदत) और 'कर्म' के कारण 'सुर' और 'असुर' अथवा 'ब्राह्मण' और 'चाडाल' होता है, जन्म वा 'योनि' से नहीं। इसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए उसने अनेक पौराणिक उदाहरण दिए है। जहाँ तक श्रीसदासुखलाल की इस मान्यता का सबध है, वह कोई नवीनता लिए हुए नहीं प्रतीत होती। प्राचीन काल से ही हमारे समाज के विधायक वर्ण की व्यवस्था जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर देते आते थे।

'सुरासुर-निर्णय' विवेचनात्मक निबध है। इसमे निबधकार अपने पक्ष का प्रतिपादन अनेक उदाहरणों को समुख रखकर करता है। इस कार्य मे उसे सफलता भी मिली है। पाठक को यदि कुछ अस्पष्टता का आभास मिलता है तो केवल निबधकार की भाषा के कारण, क्योकि वह आज का हिंदी-गद्य नही है, प्रत्युत उस समय का है जब हिंदी गद्य शक्ति-संग्रह ही कर रहा था। निबध की रचना-शैली का एक उदाहरण देखें—

प्रसिद्ध योनि है। सुर देवता, असुर दैत्य, सज्ञा है। जो कहिए असुर दैत्य हैं, इस बात मे दूषण है। कंस दैत्य न था मनुष्य था, श्रीकृष्ण का मामा, उग्रसेन का बेटा था। तो इससे समझिए कि स्वभाव असुर है, मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय।

उपर्युक्त निबंध की भाषा और उसकी अभिव्यक्ति-शैली प्राचीन है। उनमे पडिताऊपन है। वस्तु को कहने के ढग मे भी यह बात मिलती है। वाक्य-योजना वैसी नहीं है, जैसी आज होती है। यथा—

जो यह कहो कि संस्कार करके ब्राह्मण और चांडाल होता है, तो व्यास जी नारायण के अवतार है धीमरी के पेट से जनमे है।

इस निबध मे ऐसे वाक्य जिनकी योजना मे पडिताऊपन है, अनेक मिलते है। वाक्य-योजना मे पुनरुक्ति भी अनेक स्थलो पर मिलती है—

मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय।

'कि' और 'अथवा' का अर्थ एक ही है। इसी प्रकार—

"राजा छत्री होय कि अथवा म्लेच्छ, तप नहीं किया होय और आप संत ज्ञानी सेवी होय, वह निःसंदेह मुक्तरूप है इसमे कोई सदेह नहीं।

'निःसंदेह' कहने के पश्चात् 'इसमे कोई संदेह नही' कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

वाक्य-सयोजको को लोप करने की प्रवृत्ति श्रीसदासुखलाल में विशेष मिलती है। जैसे—

दुर्वासा ब्रह्मऋषि हैं, स्वभाव तमोगुणी है, उसे असुर जानना चाहिए।

प्रथम और द्वितीय वाक्य के मध्य 'परन्तु' वा 'पर' सयोजक का तथा द्वितीय और तृतीय वाक्य के मध्य 'अतः' वा 'इसलिए' सयोजक का लोप है।

'जय न पावता,' 'उसे कहा चाहिए,' 'लय हूजिए' 'बन आवै है,' 'बह-कावनेवाले,' 'ताईं' आदि प्राचीन तथा पडिताऊ प्रयोग अनेक है। इस निबंध मे 'निर्णय' का प्रयोग स्त्रीलिग मे है—

ब्राह्मण चाडाल की निर्णय भी नाम के लिए होती है।

फारसी का भी एकाध प्रयोग मिलता है। जैसे—

'लज्या खींची है।" 'लज्जा खीचना' फारसी का प्रयोग है।

३

निर्माण

हिंदी मे निबंध-रचना का आरभ श्रीसदासुखलाल द्वारा हुआ तो परतु उसके निर्माण की अजस्र धारा बही भारतेंदु-युग से, जो वर्त्तमान युग तक प्रवाहित होती आ रही है। श्रीसदासुखलाल के समय तथा भारतेंदु-युग के बीच में कोई निबधकार था अथवा नही, इसका पता अभी तक नहीं चला है। हिंदी-साहित्य की अभी पूरी खोज भी नहीं हो पाई है। इतने समय के बीच मे और निबधकार भी रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

आधुनिक हिंदी-साहित्य का आरभ भारतेंदु-युग से स्वीकार किया जाता है और यह भी सत्य है कि निबंध-निर्माण की चलन प्रभूततः आधुनिक काल से ही आरभ होती है। भारतेंदु-युग की समय सीमा सवत् १९२४ वि० से सवत् १९६० वि० तक है।

हिंदी में निबध-निर्माण के आरंभिक युग अर्थात् भारतेंदु-युग की विवेचना करते समय इस पर भी दृष्टि रखनी होगी कि उस युग मे निबंध-निर्माण का सम्यक् कारण क्या है, क्योंकि इसके पूर्व से निबंध की अटूट परपरा आती नहीं दिखाई पड़ती। भारतेंदु-युग तक आकर भारत में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ एकत्र हो गई थीं—सामाजिक तथा साहित्यिक दोनो दृष्टियो से—कि इस युग को हम समाज और साहित्य दोनों का पुनर्जागर्ति काल स्वीकार करने मे कुछ भी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं कर सकते। तद्‌युगीन समाज ही कुछ ऐसी गतियो मे घूम रहा था कि साहित्य का उसके अनुकूल चलना अनिवार्य हो गया था। साहित्य समाज से अनुप्रेरित होकर चलता भी है। यह सत्य है कि साहित्य की अपनी भी कुछ प्रेरणा होती है, जिससे वह शासित रहता है, पर उस पर समाज की छाप विशेष रहती है। चाहे वह प्रत्यक्षतः रहे चाहे परोक्षतः। भारतेंदु-युगीन साहित्य में तत्कालीन समाज की छाप स्पष्ट है।

यह सत्य है कि अँगरेज प्रभुओं की नीति अपनी ही समृद्धि पर दृष्टि रखकर चलती रही, पर इस कार्य की सिद्धि के लिए वे दूसरों की सुविधा पर भी यदाकदा दृष्टि रखते थे और इस प्रकार दूसरो को अपने पक्ष में कर; उन्हें दूधीविष दे, अंततः सारा मैदान अपने ही हाथो कर लेते थे। इनकी यह प्रवृत्ति भारत-आगमन के आरंभ से ही दिखाई पडती है। भारत को सभ्य बनाने के लिए (!) उन्होंने जो कुछ किया वा उसे जो कुछ सुविधाएँ दीं वह इसी नीति की प्रेरणावश। 'ईस्ट इडिया कंपनी' के शासन के प्रति असंतोष के कारण, जो असंतोष भारतीय राजनीति, धर्म, आचार-व्यवहार सभी के पक्ष को लेकर था, सवत् १९१४ (सन् १८५७) की क्राति हुई और वह दबा भी दी गई। पर इस क्राति मे भारतीयो की उग्रता का अनुभव विदेशी शासन को भलीभाँति हुआ। अतः अनेक सुविधाएँ देकर अँगरेज प्रभु भारतीय जनता को शात करना चाहते थे। 'ईस्ट इडिया कंपनी' के शासन के अंत होने और भारत का शासन इंगलैंड की सरकार के हाथों मे जाने पर महारानी विक्टोरिया के 'घोषणापत्र' का, जो सवत् १९१५ (पहली नवबर, सन् १८५८) मे घोषित हुआ, मूल कारण यही था। इस 'घोषणापत्र' द्वारा महारानी विक्टोरिया ने "अपने राज्य मे सारी प्रजा के साथ समान बर्ताव करने, जाति, धर्म अथवा रंग के कारण किसी को किसी भी पद से वंचित न करने, और किसी भी धर्म के विषय मे हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। संवत् १९१४ के आदोलन मे भारत की किन्हीं देशी रियासतो का भी प्रमुख हाथ था, अतः उनके साथ भी उदार नीति बरतने का वचन महारानी ने दिया और डैलहौजी साहब की नीति का परित्याग कर दिया गया।

अँगरेजी शासन की दृष्टि भारतीयों को राजनीति द्वारा ही विजित करने की ओर नहीं रही, वरन् सास्कृतिक विजय की महत्त्वाकाक्षा से भी वह सदैव प्रेरित रहा। भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना इसका ज्वलत प्रमाण है। इसके अतिरिक्त शिक्षा पर उनकी दृष्टि का विशेष रूप से जाना भी इसका प्रमाण है कि वे सास्कृतिक दृष्टि से भारत पर अपनी विजय स्थापित करना चाहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस विजय मे स्थायित्व विशेष है। श्रीचाल्र्सवुड की रिपोर्ट (संवत् १९११) के अनुसार प्रारभिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए बहुत-सी पाठशालाएँ स्थापित की गई। सरकार की दृष्टि उच्च शिक्षा पर भी गई और उसने सवत् १९१४ मे कलकत्ता, बंबई और मद्रास की प्रेसिडेंसियों मे युनिवर्सिटियों की स्थापना की।

इस प्रकार हम देखते है कि संवत् १९१४ के आदोलन के पश्चात् अँगरेजी शासन मे उदारता का समावेश होने लगा। इस उदारता का क्या कारण था,

यह बात दूसरी है। इस उदारता के कारण पहले से जकडी हुई भारतीय जनता को अपनी आशा-अभिलाषाओ, अपने विचारो आदि के व्यक्त करने का अवसर मिला। अँगरेजी शिक्षा इसमे विशेष सहायक हुई। यह सत्य है कि भारतीयों के लिए अँगरेजी शिक्षा अंत मे घातक सिद्ध हुई, पर अपने आरभिक समय में इसने भारत की जनता को एक दूसरे देश के साहित्य, विज्ञान, समाज-नियम वा व्यवहार आदि से परिचित करा कर उन्हे एक नवीन देश के विचारो को प्रदान किया, जिसके द्वारा उनकी दृष्टि मे व्यापकता और उदारता आई, वे किसी वस्तु को आगे रखने के लिए प्रगल्भ बने। इसके द्वारा उनकी सामाजिक तथा धार्मिक कट्टरता भी दूर हुई। इस कट्टरता को दूर करने मे रेल, तार, अस्पताल आदि की स्थापना ने विशेष कार्य किया। हम यह नहीं कहते कि अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के कारण उस समय की भारतीय जनता ने अपनी भारतीयता भुलवा दी थी, क्योकि उस समय के सभी विशिष्ट पुरुषो मे हम इसका प्रचुर परिमाण पाते है, इसके अतिरिक्त भारतीयता का भूल जाना सारी भारतीय जनता के लिए सभव भी नही था, कारण यह है कि अँगरेजी शिक्षा का ग्रहण उस समय तक प्रायः समाज के उच्च वर्ग के लोग ही कर पाए थे। पर नवीन शिक्षा मे कुछ ऐसा आकर्षण अवश्य था जिसके कारण लोग इससे विशेष प्रभावित हुए। इसके द्वारा प्रभावित होने का प्रधान कारण यह है कि अँगरेजी साहित्य और विज्ञान मे भी कुछ अपनापन है, उनमे इतनी शक्ति अवश्य है कि वे प्रभावित कर सके।

अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा, उसके साहित्य, विज्ञान, तथा अँगरेजी चाल-ढाल, आचार-व्यवहार, रीति-नीति का प्रभाव पहले बंगाल प्रदेश पर विशेष पड़ा। वग प्रदेश के निकट के पश्चिमी प्रदेशों बिहार तथा विशेषतः उत्तर प्रदेश मे भी उपर्युक्त वस्तुओ का प्रभाव कुछ कम नहीं रहा। इसका कारण इस प्रदेश से अँगरेजों का संबध तथा बंगालियों से भी इस प्रदेश के लोगों का संबध है। और उत्तरोत्तर अँगरेजों का यह प्रभाव सारे भारतवर्ष मे बढ़ता गया। भारतेंदु-युग के आरंभ में भारतीय समाज की यह अवस्था थी।

भारतेंदु युग के आरभ मे हिंदी-साहित्य के विषय में कहना यह है कि उस समय साहित्य के अंतर्गत विशेषतः काव्य पर ही साहित्यकारो की दृष्टि थी, और वह प्रायः प्राचीन और रूढिवादी ढर्रे पर चल रहा था। हिंदी-साहित्य मे गद्य की ओर लोगो की दृष्टि कम थी। पर इसमें संदेह नहीं कि कुछ लोगो के हाथों में पड कर हिंदी-गद्य शक्ति-संग्रह अवश्य कर रहा था। और जब भारतेंदु-युग की स्थापना का आभास मिलने लगा तब उस समय के साहित्यकार गद्य पर

विशेष ध्यान देने लगे। सच तो यह है कि भारतेंदु-युग से हिंदी-साहित्य में गद्य का प्राधान्य आरंभ हुआ। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग के आरंभ में हिंदी भाषा कुछ-कुछ सशक्त हो चुकी थी, उसमें पूर्ण शक्ति नहीं आ पाई थी। उसमें पूर्ण शक्ति आई भारतेंदु-युग के साहित्यकारो द्वारा।

इसकी चर्चा हुई कि अँगरेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय समाज का उच्च वर्ग अँगरेजी साहित्य के संपर्क मे आया; और भारतेंदु-युग के प्रायः सभी साहित्यकार इसी वर्ग के थे। इन साहित्यकारो ने अँगरेजी साहित्य में एक प्रकार का गद्य-विधान देखा, जो निबंध की अभिधा ग्रहण करता है और इन लोगों ने यह भी देखा कि हिंदी-साहित्य मे गद्य-विधान का यह रूप नहीं अथवा कम है और इन लोगो ने इसका भी अनुभव किया कि गद्य-विधान के इस रूप द्वारा अपनी बात को सीधे-सीधे दूसरो तक पहुँचाने मे सुविधा है। अतः इनके द्वारा हिंदी मे भी गद्य-विधान के इस रूप का ग्रहण भली प्रकार कर लिया गया। इसे तो हमने देख ही लिया है कि निबंध का आरंभ किसी न किसी रूप में इस युग के लगभग सौ वर्ष पूर्व ही हो गया था, पर भारतेंदु-युग के निबंधकारो ने जब निबंध-निर्माण का कार्य आरंभ किया तब उसमें अँगरेजी साहित्य की प्रेरणा विशेष अवश्य थी। यहाँ स्मरण रखने की बात यह भी है कि निबंध एक प्रकार का गद्य-विधान है और भारतेंदु-युग मे साहित्यकारो की दृष्टि गद्य पर विशेष थी भी, जिसकी चर्चा हम ऊपर देख चुके है। हिंदी मे निबंध-निर्माण के एक कारण की रूप-रेखा इस प्रकार है।

भारतेंदु-युग मे निबंध-निर्माण का दूसरा कारण है उसके आरंभ मे ही अनेक पत्र-पत्रिकाओं का आविर्भाव। जितनी पत्र-पत्रिकाएँ इस युग के आरंभ मे निकलीं उन सभी की मूल प्रेरणा साहित्यिक थी और साहित्य की दृष्टि से सभी अनेकांगी थीं, अर्थात् उनमे साहित्य के सभी अंगो की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उनमे सामाजिक प्रभाव से उद्भूत रचनाएँ भी दृष्टिगत होती है। तो, उनमे साहित्य की अनेकांगिता के कारण निबंध का समावेश प्रायः रहता था। इसके अतिरिक्त साहित्य और समाज के विषय मे विचारो की अभिव्यक्ति वा उनके आदान-प्रदान के लिए स्पष्ट, सीधा और सुविधाजनक विधान—निबंध का ही ग्रहण किया गया। ऐसी स्थिति मे स्वतंत्र रूप से निबंधों की रचना तो दिखाई ही पडती है संपादकीय वा अग्रलेख के रूप मे भी निबंधो का ग्रहण हुआ। भारतेंदु-युग मे निबंध-निर्माण के उपर्युक्त दो कारण स्पष्टतः लक्षित होते है।

उपर्युक्त चर्चा से भारतेंदु-युग के आरम्भ की उन सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का भी आभास मिलता है जिनके बीच इस युग के निबंध का श्रीगणेश हुआ। भारतेंदु-युग में सामाजिक और साहित्यिक चेतना भी बड़ी प्रबल और सजग थी। इस युग की सामाजिक चेतना से तात्पर्य है भारतीयता की चेतना—अपनेपन की चेतना, जो समाज, धर्म, राजनीति सभी को लेकर चलती थी। इस युग के जिन भारतीयो में अपनेपन की भावना न थी उनके प्रति लोगो की धारणा बड़ी निम्न कोटि की थी और उन पर कटु बौछारें किए बिना लोग नहीं रहते थे। इस युग की अपनेपन की चेतना के साथ ही यह भी स्मरण रखना है कि यह युग ऐसा था जिसमे राज-भक्ति की भावना भी लोगो मे मिलती है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है अँगरेजी सरकार द्वारा यदाकदा भारतीयो की सुविधा का खयाल रखना। इसके अतिरिक्त तब तक उपर्युक्त सरकार उतनी कटु नीति का व्यवहार नहीं करती थी जितनी कटु नीति का व्यवहार उसने बाद में किया। यहाँ इस बात पर भी ध्यान जाता है कि तब तक भारतीय जनता का उतना शोषण नही हुआ था, अँगरेजी सत्ता तब कायम ही हुई थी। उसमे आसूदगी थी। बाद मे यह बात नही रही। इन्ही कारणों से तद्युगीन जनता की दृष्टि राज-भक्ति पर भी थी। परंतु इन लोगो के हृदय में पैठ कर यदि देखा जाय तो विदित होगा कि भारतीयता की भावना का प्राबल्य इनमे विशेष था और राज-भक्ति की भावना में उतना जोर न था। भारतेंदु-युग के समाज के भारतीयपन की यह चेतना उस समय के निबंधो तथा अन्य प्रकार के साहित्यो मे विद्यमान है। वह भावना भी उस समय के निबंधों तथा अन्य प्रकार के साहित्यो मे विद्यमान है जो राज-भक्ति को लेकर थी।

भारतेंदु-युग की साहित्यिक चेतना की प्रबलता तथा सजगता पर भी हमने संकेत किया है, जिस की प्रेरणा के कारण उस समय हिंदी-साहित्य मे नवीन-नवीन विषयो तथा शैलियो का ग्रहण किया गया। गद्य की भाषा के विषय मे उस युग के साहित्यकारों के कार्य की जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। इन्ही कारणोवश उस युग मे निबंध-रचना का प्राधान्य रहा। भारतेंदु-युग में ऐसे निबधों की कमी नही है जो विशुद्ध साहित्यिक प्रेरणावश लिखे गए हो। उस युग के निबंधकारों ने साहित्यिक निबंध-रचना की सभी शैलियों का व्यवहार भी किया। भारतेंदु-युग के पश्चात् के युगो में निबंध-रचना की सभी शैलियों का ग्रहण धीरे-धीरे कम होता गया, उसके बाद निबंधकारो की दृष्टि इसकी सभी शैलियों के ग्रहण की ओर कम दिखाई पड़ती है। वर्तमान युग में

तो निबध-रचना की केवल दो-एक शैलियाँ ही विशेषत: चलती है। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग में साहित्यिक चेतना की प्रबलता और सजगता थी, निबंध को दृष्टि-पथ में रखकर जिसकी चर्चा अभी-अभी की गई है।

भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों के साथ हम उस युग के उन थोड़े से ऐतिहासिक और वैज्ञानिक निबंधो वा लेखो का भी स्मरण कर सकते है जो अँगरेजी विज्ञान के संपर्क मे आने से लिखे गए है। उस युग में हम अँगरेजी विज्ञान से भी अवश्य प्रभावित हुए थे—जिस प्रकार अँगरेजी साहित्य से प्रभावित हुए थे।

इस प्रकार विदित हुआ कि भारतेंदु-युग की सामाजिक चेतना भी उस युग के निबधों मे उतरी और विशुद्ध साहित्यिक चेतना भी। भारतेंदु-युग के समाज के साथ साहित्य के चलने की विशेषता को दृष्टि मे रखकर यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि उस युग के सामाजिक निबंधो वा लेखो मे समाज की सभी बाते तो विद्यमान है ही, साहित्यिक निबधो मे भी वे संनिविष्ट है, पर यहाँ वे साहित्यिक ढग से सनिविष्ट है, यही विशेषता है।

उपर्युक्त विवेचना द्वारा स्पष्टतः यह आभास मिलता है कि यदि हम चाहें तो भारतेंदु-युग के निबधो को स्थूलतः दो श्रेणियों में रख सकते है। इनकी एक तो सामाजिक श्रेणी होगी और दूसरी साहित्यिक। साहित्यिक श्रेणी के साथ हम उन निबंधों को भी रख लेंगे जो ऐतिहासिक और वैज्ञानिक है। कारण यह कि इन तीनो प्रकार के निबधो का सबध विद्या से है।

———

४

सामाजिक निबंध

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबधो की मीमासा के पूर्व 'सामाजिक' शब्द द्वारा गृहीत अर्थ पर सकेत कर देना उचित होगा। इस शब्द को हम कुछ व्यापक रूप मे ग्रहण करना चाहते है। इससे हमारा अभिप्राय समाजगत सारी गतिविधियो से है, जिनके अतर्गत समाज की समस्याएँ, धर्म, राजनीति, आचार-व्यवहार, रीति-नीति, समाज के गुण-दोष, गौरव और हीन भावना आदि सभी आते है। 'सामाजिक' शब्द द्वारा इस व्यापक अर्थ के लेने का आधार यह है कि वस्तुतः धर्म, राजनीति तथा उपर्युक्त सारी बाते समाज से ही सबद्ध है, ये सब समाज को ही लेकर चलती है। ऐसी स्थिति में भारतेंदु-युग के सामाजिक निबधों पर विचार करते हुए हमारी दृष्टि उपर्युक्त विषयों को लेकर प्रस्तुत हुए निबंधो पर अवश्य होगी।

उपर्युक्त विषयो को दृष्टि-पथ मे रखकर भारतेंदु-युग मे प्रस्तुत हुए निबंधों की मूल प्रेरणाओ पर भी हमारी दृष्टि जाती है। उस युग की प्रमुख मूल प्रेरणा, जिस पर सभी साहित्यकारो की दृष्टि थी, भारत के प्राचीन गौरव की भावना है। उस युग मे इस भावना की चेतनता का भी कारण था। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतेंदु-युग मे भारतीयता तथा विदेशीयता का काफी सघर्ष रहा। वस्तुतः यह वह युग था जब भारतवासी तथा अँगरेज भलीभाँति एक दूसरे से परिचित होने की भूमिका मे थे। भारतवासियों को अँगरेजो की सारी जीवन-चर्या तो नही भी मालूम हो सकती थी, परंतु अँगरेज भारतवासियों के जीवन से पूर्णतः अभिज्ञ हो गए थे वा हो रहे थे। यहाँ यह भी स्मरण रखना है कि भारतीय तथा अँगरेजी सभ्यता और संस्कृति दो भिन्न वस्तुएँ है। ऐसा होते हुए भी अँगरेजी शासन भारतीयों पर सास्कृतिक विजय की महत्त्वाकाक्षावश अपनी सभ्यता और संस्कृति को भारतीयों पर लादने की फिराक में सदा रहता था। इस ओर उन्होंने कार्य करना भी

आरंभ कर दिया था। ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना, अँगरेजी भाषा तथा साहित्य का पठन-पाठन आवश्यक ठहराना तथा ऐसे ही और कार्य इसके प्रमाण हैं। नई शिक्षा-दीक्षा, सभ्यता-संस्कृति की चकाचौंध से भ्रमित कुछ भारतवासी भी विलायती बाबू बन गए थे और कुछ बनने के प्रयत्न मे थे। परंतु ऐसे लोगो की सख्या अति न्यून थी। अभिप्राय यह कि भारतेंदु-युग मे कुछ परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गई थीं जो भारतीयता को बार-बार धक्का दे रही थीं। भारत के प्राचीन तथा तत्कालीन गौरव को ध्यान में रखनेवाले और उस पर गर्व करनेवाले भारतेंदु युग के प्रायः सभी निबंधकार इस धक्के को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। इन लोगों ने अपनी रचनाओं मे प्राचीन काल से चली आती हुई भारतीय परंपरा और उसके गौरव का दर्शन उन लोगों को कराया जो विदेशीपन मे गर्क थे और उन लोगों को भी इसका दर्शन कराया जा उस ओर लपक रहे थे। इस कार्य को करते हुए इनकी प्रवृत्ति द्विमुखी दिखाई पडती है। ये लोग उन लोगो पर कड़े व्यंग्य कसते थे जो विदेशीपन मे आकंठ मग्न थे और उन लोगो को भारतीय गौरव को दिखा कर सचेत करते थे और उस ओर लपकने से रोकते थे जो अगाड़ी-पिछाड़ी छुड़ा कर विदेशीयता की ओर भाग रहे थे वा भागना चाहते थे। ऐसी स्थिति में उस युग के निबधकारो को—विशेषतः सामाजिक विषयो पर लिखते हुए—सुधार और उद्बोधन का कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार हम देखते है कि भारतेंदु युग के सामाजिक निबधों की एक मूल प्रेरणा भारतीय गौरव है, जो उस युग के इस प्रकार के सभी निबंधकारों में मिलती है। भारतेंदु-युग मे यह प्रेरणा देश-भक्ति का एक अंग थी।

भारत के प्राचीन गौरव की भावना को लेकर ही उस समय कुछ सस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनमे स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित—सवत् १९३२ मे—'आर्य-समाज' सर्वप्रमुख है। समय को दृष्टि मे रखकर विचार करने से विदित होता है कि 'आर्यसमाज' उस युग की पूर्ण आदर्शवादी सस्था थी। यह जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सभी पक्षो को लेकर चलती थी। तात्पर्य यह कि यह जीवन और समाज मे सर्वांगीण आदर्श स्थापित करना चाहती थी, जिस आदर्श का मूलाधार था वेद। यह बात अवश्य है कि इस मूलाधार के प्रतिपादन में स्वामी जी की कुछ अपनी दृष्टि थी, जिसके कारण 'आर्यसमाज' में कुछ साम्प्रदायिकता आ गई। पर, भारतीय जनता मे आत्मगौरव की भावना भरने मे इस आदर्शवादी संस्था ने जितना काम किया है उतना और किसी सस्था ने नहीं किया। हम कहना यह चाहते है कि भारतेंदु-युग मे

भारत के प्राचीन गौरव की मूल प्रेरणा को जगाने और उसके प्रसार करने में 'आर्यसमाज' का विशेष हाथ था।

अपने गौरवपूर्ण अतीत और वर्तमान मे अपनी सशक्तता तथा सामर्थ्य पर विश्वास के कारण भारतेंदु-युग मे भारतीय जनता में अधिकार प्राप्ति की भावना भी प्रबल थी। कुछ विज्ञो का कथन है कि अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा के कारण इस भावना का उदय हुआ था। इनका कथन भी सत्य हो सकता है। परतु इस माँग की भावना मे भारतीयो का शासक द्वारा दबाया जाना ही प्रधान कारण है। सच तो यह है कि उस समय तक भारतीयो मे अपने भले-बुरे की पूरी पहचान आ गई थी। अब वे लकीर के फकीर नहीं बन सकते थे। भले-बुरे की पहचान मे उनकी दृष्टि भारतीयता तथा विदेशीयता दोनों पर थी। अपने यहाँ की बुरी वस्तु पर भी उनकी दृष्टि जाती थी और वे इससे बचना चाहते थे। अभिप्राय यह कि रूढ़िवादिता अब बहुत कुछ दूर हो रही थी। उनसे तो यह वस्तु दूर हो ही चुकी थी जो साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे थे। भारतेंदु-युग के प्रायः सभी निबधकारो में भले-बुरे की पहचान की और अधिकार प्राप्ति की भावनाएँ मिलती हैं। उनके सामाजिक निबध इसके प्रमाण हैं।

कहा जाता है कि उपर्युक्त भावना के कारण ही- संवत् १९४२ में श्री ए० ओ० ह्यूम और श्री विलियम वैडरबर्न द्वारा 'इडियन नेशनल काग्रेस' की स्थापना हुई थी। यह तो सत्य है कि आगे चलकर काग्रेस ने यही रुख अख्तियार किया। पर इसके संस्थापको के हृदय मे यह भावना थी अथवा नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कहने की आवश्यकता नहीं कि संस्थाओ की सस्थापना मे अँगरेजी सरकार द्वारा प्रोत्साहन देने का लक्ष्य होता था, भारतीयो के हृदय की बात जानकर तदनुकूल नीति निर्धारित करने का। अँगरेज जाति के व्यक्तियो द्वारा काग्रेस की स्थापना का यही मर्म जान पड़ता है। इसके मूल की बात चाहे जैसी भी हो परतु यह सत्य है कि काग्रेस क्रमशः भारतीयों के हृदय मे जागरण की भावना भरने मे पूर्ण सफल रही है।

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबधो मे ये दो मूल प्रेरणाएँ सर्वत्र और स्पष्टतः लक्षित होती हैं। द्वितीय प्रेरणा के कारण ही भारतेंदु-युग मे भारतीयों की अनेक माँगे अँगरेजी सरकार से हुई थीं, सरकार ने अपनी सुविधा पर दृष्टि रखकर जिनमे से कुछ माँगे पूरी भी की थीं। इनमें से स्थानीय स्वायत्तशासन सर्वप्रधान है, जो लार्ड रिपन के समय में मिला था। शासन संबंधी अन्य परिवर्तनों पर भी उस युग के निबंधकारों की दृष्टि थी। जैसे वंग-विच्छेद पर। उनके निबंधो मे इसकी प्रत्यक्षतः तथा परोक्षतः चर्चा मिलती है। इसके अति-

रिक्त उस युग के आधिदैविक कष्टों पर भी लोगो की दृष्टि गई थी। भारतेंदु-युग की अवधि में लगभग पॉच अकाल पड़े थे। प्लेग का प्रकोप भी दो तीन बार हुआ था। उस युग के निबंधकारों ने इनकी चर्चा भी की है।

भारतीय जीवन के धार्मिक तथा सामाजिक गुण-दोषो पर भी तद्युगीन निबंधकारों की दृष्टि स्पष्टतः लक्षित होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतेंदु-युग के निबंध उस युग का पूरा प्रतिनिधित्व करते है। वस्तुतः समाज और साहित्य का सबध जैसा भारतेंदु-युग के साहित्यकारो ने स्थापित किया वैसा अन्य युगों मे दुर्लभ है।

सामाजिक निबधो को दृष्टि पथ में रखकर भारतेंदु-युग के निबधकारो पर विचार करने से उनकी स्थूलतः दो श्रेणियाँ निर्धारित की जा सकती है। एक श्रेणी मे तो वे निबधकार आएँगे जो प्रसिद्ध है और जिनकी रचनाएँ भी इस विषय पर अधिक है। दूसरी श्रेणी मे वे आएँगे जो इस क्षेत्र मे न उतने प्रसिद्ध ही है और न उनकी रचनाएँ ही अधिक है। प्रथम श्रेणी मे आनेवाले निबंधकार है—भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र, श्रीबालकृष्ण भट्ट और श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'। द्वितीय श्रेणी मे ये निबधकार आते है—लाला श्रीनिवासदास, श्रीराधाचरण गोस्वामी, श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पड्या, श्रीकाशीनाथ खत्री और श्रीचंद्रभूषण चातुर्वैद्य। अतिम श्रेणी के निबधकारो के विषय मे यहाँ दो बाते कह देनी आवश्यक है। एक तो यह कि यद्यपि इनकी रचनाएँ बहुत ही थोडी मिलती है तथापि इन्हे निबधकारो के अतर्गत रखना पड़ रहा है। ऐसा करने का भी कारण है, वह यह कि उस युग मे हिंदी-निबंध-रचना का विशेष प्राधान्य न था, इसकी परपरा आरंभ ही हुई थी, ऐसी स्थिति में दो-चार निबंध रचनेवालों को भी निबधकार की श्रेणी मे रख लेना अनुचित नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः किसी साहित्य के आरभिक युग मे थोड़ी रचना करनेवालो को भी कम महत्त्व नही दिया जा सकता। उनका सब से बडा महत्त्व तो यही है कि वे किसी रचना विशेष की ओर अग्रसर हुए। लाला श्रीनिवासदास और श्रीकाशीनाथ खत्री भारतेंदु-युग के ऐसे ही निबंधकार हैं। दूसरी बात भारतेंदु-युग के निबधकारों के विषय मे यह कहनी है कि उस समय कुछ निबंधकार ऐसे थे जो पत्रकार वा पत्र-संपादक भी थे और वे अपनी रचनाएँ प्रायः बिना नाम के अपने पत्र में प्रकाशित करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य लोगों की रचनाएँ भी पत्रो मे प्रायः बिना नाम के छाप दी जाती थीं। इस स्थिति मे उनकी रचनाओं के विषय में कोई निर्णय करना दुःसाध्य है। फिर भी शैली, पदावली आदि के द्वारा निर्णय में सहायता मिलती है। श्रीराधाचरण

गोस्वामी और श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ऐसे ही निबंधकार हैं। उस युग के साहित्यिक निबंधकारो तथा उनके निबधो के विषय मे भी इन दोनों बातो का स्मरण रखना आवश्यक है।

द्वितीय कोटि के निबधकारो मे लाला श्रीनिवासदास का 'भरतखड की स्मृद्धि'* नामक निबध बडा महत्त्वपूर्ण है, जिसमे भारत के प्राचीन गौरव की चर्चा यहाँ की विद्या, शिल्प, कला, व्यापार आदि को दृष्टि-पथ मे रखकर की गई है। भारत की समृद्धि से विदेशीय लोगो ने कितना लाभ उठाया, भारत ने उन्हें क्या-क्या सिखाया, इसका वर्णन किया गया है। इस वर्णन के पश्चात् निबंधकार की दृष्टि तुरत ही भारत की वर्तमान अवस्था पर जाती है और वह भारत को बडी ही दीन-हीन अवस्था मे पाता है। निबंध के अत मे इस अवस्था से उद्धार पाने के लिए निबधकार ने उद्बोधन भी दिया है।

लाला श्रीनिवासदास के निबधो को देखने से विदित होता है कि वे बहुपठ व्यक्ति थे। उपर्युक्त निबंध मे उन्होने देशी और विदेशी इतिहास से अनेक उदाहरण दिए है—कहीं-कही सन्-संवत् तक भी। निबध मे इनकी यह प्रवृत्ति सर्वत्र लक्षित होती है। इनके निबधों में अँगरेज जाति वा उनके साहित्य से भी अनेक दृष्टात लिए हुए मिलते है। जैसे—'सदाचरण†' नामक निबंध मे। अभिप्राय यह कि इन निबधो द्वारा इनकी योग्यता का पूर्ण परिचय मिलता है। सामाजिक निबधकारो मे बहुपठता की दृष्टि से जो स्थान लाला श्रीनिवासदास का है वही स्थान साहित्यिक निबधकारो में श्री हरिश्चद्र उपाध्याय का।

श्रीराधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेंदु' नामक मासिक पत्रिका सवत् १८६० (सन् १७६३) मे वृदावन से निकाली थी। इनके निबध प्रायः इसी पत्रिका मे मिलते हैं, जो विशेषतः सामाजिकता को ही लेकर चले है। इनके निबंधो को देखने से विदित होता है कि उनका विषय भारतेंदु-युगीन देश तथा काल है। साहित्यिक निबध इनके कम है।

भारतेंदु-युग के सामाजिक निबंधों की मूल प्रेरणाओं की चर्चा करते हुए इसका निर्देश किया गया है कि उस युग मे रूढ़िवादिता पर कम लोगों की दृष्टि थी, पर साथ ही अपनी परंपरा पर भी किसी को अश्रद्धा न थी। अँगरेजो शिक्षा-दीक्षा मे विशेष रूप से पले उस समय के कुछ लोग रूढ़िवादिता को बड़ी हेय दृष्टि से देखते थे और उसे तोड़ना एक फैशन समझते थे। कहना न होगा

---

* श्री हरिश्चद्रचद्रिका, खड १, सख्या ६, सवत् १६३१
† भारतेंदु, पुस्तक १, अंक ५, सवत् १६४०

कि ऐसे लोगो तथा अँगरेजी बाबुओं मे कुछ विशेष अंतर न था—कम से कम विचारो की दृष्टि से। इन लोगो मे से कुछ लोग ऐसे थे जो उस समय थियोसोफ़िकल सोसायटी से विशेष प्रभावित हुए थे। इस सोसायटी का प्रभाव भारत के उच्च वर्ग के लोगों पर ही दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार ब्रह्मसमाज का प्रभाव भी उस समय अच्छा था। वह बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों मे भी अपने हाथ-पैर फैला रहा था। श्रीराधाचरण गोस्वामी पर भी इस समाज का प्रभाव पड़ा था और उन्होने इसके पक्ष मे कुछ निबध भी लिखे थे, जो 'हिंदू बाधव' मे मिलते है।

श्रीराधाचरण गोस्वामी के निबध और लेख बड़े मनोरंजक तथा प्रौढ़ होते थे। इस दृष्टि से वे उस समय के प्रतिनिधि निबधकारो की श्रेणी मे बिठाए जा सकते है।

श्रीमोहनलाल विष्णुलाल पंड्या भी 'हरिश्चद्रचद्रिका और मोहनचद्रिका' के सपादक थे, अतः इनके निबध प्रायः इस पत्रिका मे मिलते है। इनके निबंध भी सामाजिक है। जैसे, 'हम लोगो की वृद्धि किस रीति से होगी, 'बधुत्व किसे कहते है,' खुशामद' आदि। ये सभी निबध उपर्युक्त पत्रिका मे प्रकाशित है।

श्रीकाशीनाथ खत्री भी प्रधानतः सामाजिक निबधकार के रूप मे ही हमारे समुख आते है। इनके निबधो का विषय भी तद्युगीन समाज ही है। जैसे, विधवा, स्वदेशप्रेम आदि।

श्रीचद्रभूषण चातुर्वेद्य के निबध, जिनकी संख्या अधिक है और जो समाज को लेकर लिखे गए है, 'नागरीनीरद' साप्ताहिक पत्र मे प्रकाशित है। ये समाज के सभी अगो को दृष्टि में रखकर चलते थे। पर्व, त्योहार, धर्म, कर्तव्यपालन, स्त्री-महत्त्व, जातिभेद आदि अनेक सामाजिक विषयो पर इनके निबंध मिलते है। इनके कुछ निबंध मनोविकारो पर भी है, जैसे—क्षमा, उपकार, छल आदि; पर इनका प्रधान विषय समाज ही है। इनके निबधो को देखने से विदित होता है कि ये पढ़े-लिखे अच्छे पडित थे—सस्कृत के, और भारतीय दृष्टि से ही सारी बातो पर विचार किया करते थे। इनके जो निबंध मनोविकारो पर है उनका प्रतिपादन भी इन्होने प्रायः धार्मिक दृष्टि से किया है, शुद्ध मनोविकार की दृष्टि से नहीं।

भारतेंदु युग के प्रसिद्ध और प्रतिनिधि निबधकारों से हम परिचित है। समाज से सबद्ध कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर इनकी दृष्टि न गई हो। समाज की तत्कालीन समस्याएँ, उसके गुण-दोष, राजनीति, धर्म, पर्व-त्योहार आदि सभी इनकी दृष्टि-सीमा के अतर्गत दिखाई पड़ते हैं। इस युग के प्रसिद्ध

और प्रतिनिधि निबंधकारों पर विचार करते हुए इस पर भी दृष्टि रखनी होगी कि इन निबंधकारों का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान सामाजिक निबंधों के क्षेत्र में है उतना ही साहित्यिक निबंधों के क्षेत्र में भी। कहना तो यह चाहिए कि इस क्षेत्र मे—अर्थात् साहित्यिक क्षेत्र मे—ये और भी चमकते हुए प्रतीत होते है। साथ ही इस पर भी ध्यान रखना होगा कि परिस्थितिवश इन निबंधकारों को समाज और साहित्य का पूर्ण सामंजस्य करके चलना पडता था। बिना ऐसा किए वे एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते थे। हम तो यह भी कहना चाहते है कि उस युग के ये निबंधकार समाज सुधारक के रूप मे भी हमारे समुख आते है; और वास्तव मे ये इस कार्य मे सक्रिय भाग लेते थे। उपर्युक्त सभी निबंधकार ऐसे थे। ऐसी स्थिति मे सामाजिक विषय को लेकर ये विशुद्ध सामाजिक निबंध तो प्रस्तुत करते ही थे इनके साहित्यिक निबंधो मे भी सामाजिकता का प्रभूत पुट रहता था—प्रायः हास्य और व्यंग्य की शैली मे। बात यह है कि ये समाज और जीवन को साहित्य से पृथक् नहीं कर सकते थे। कहना यह है कि उपर्युक्त निबंधकारों मे से कुछ के सामाजिक निबंध कम मिलते है और तत्कालीन समाज के सभी विषयो को भी लेकर कम मिलते है, पर इसका तात्पर्य यह नही समझना चाहिए कि इनकी दृष्टि संपूर्णतः समाज पर नहीं थी। समाज के कुछ विषयो पर तो ये अपनी राय विशुद्ध सामाजिक निबंधो में व्यक्त करते थे और कुछ विषयों पर एक भिन्न और मनोरंजक पद्धति द्वारा साहित्यिक निबंधो मे।

भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि और प्रसिद्ध निबंधकारो मे सर्वप्रथम भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का नाम आता है। साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा थी उसी प्रकार सामाजिक सभी विषयो पर भी ये दृष्टि रखते थे। उनके जीवनवृत्त जाननेवालो पर यह प्रकट है कि उनका एक पक्ष समाजसुधारक का भी है। राजनीति के क्षेत्र में भी वे कितने निर्भीक थे, यह किसी से छिपा नहीं है। उनकी राजनीतिक क्षेत्र की निर्भीकता के समान ही सामाजिक क्षेत्र की निर्भीकता भी सराहनीय है। जीवन और समाज मे किसी वस्तु की ग्राह्यता के प्रश्न का हल वे उसकी प्राचीनता वा नवीनता को दृष्टि-पथ मे रखकर नहीं करते थे, प्रत्युत उसकी उपयुक्तता तथा उसके द्वारा कल्याण को दृष्टि मे रखकर इस (ग्राह्यता) का निर्णय करते थे। हम इस पर संकेत कर चुके है कि यह युग रूढ़िवादिता का आग्रह लेकर नही चलता था। ऐसी स्थिति मे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र उन सभी विषयो के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते थे जो समाज और जीवन के लिए अहितकर होते थे। ऐसा करते हुए न उन्हें समाज का डर होता था और न सरकार का। इस प्रकार अपने देश, समाज और जीवन

के हित-साधन के लिए निर्भीकता का समावेश भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के सभी सामाजिक निबंधों मे मिलता है। उदाहरणस्वरूप उनका "अंगरेजों से हिंदुस्तानियों का जी क्यौ नहीं मिलता ?"* शीर्षक लेख देखा जा सकता है, जिसमें जी न मिलने के सत्य कारणो का स्पष्टतः उल्लेख हुआ है। इसका उल्लेख करते हुए भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने निर्भीकतापूर्वक हिंदुओं और ॲंगरेजों मे एक दूसरे के प्रति सत्य धारणाओं की चर्चा की है। उन्होने कहा है कि ॲंगरेज हिंदुओ की मूर्ति-पूजा से असतुष्ट है और हिंदू ॲंगरेजो द्वारा गोवध से, हिंदू ॲंगरेजो को अपवित्र, विदेशी, क्रूर आदि समझते है और ॲंगरेज हिंदुओ को पराजित, मूर्ख, अंधकार मे पड़े हुए, अपने हाथ का खिलौना आदि। दोनो पक्षों से उन्होने ऐसी ही और बाते भी उपर्युक्त निबंध मे कही है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने ॲंगरेजो के कुछ दोषो का निर्देश किया है, जिनके कारण जी मिलने की जगह फटा जा रहा है। इसी प्रकार हिंदुओ के दोषो का भी निर्देश किया गया है। ॲंगरेजो का एक दोष, जिससे स्वयं भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र भी क्षुब्ध प्रतीत होते है, है हिंदू मजिस्ट्रेट को ॲंगरेज को दंड देने का अधिकार न मिलना और ॲंगरेज मजिस्ट्रेट को ऐसा करने का अधिकार मिलना। उन्होंने इसे "केवल पक्षपात" कहा है। कहना न होगा कि लार्ड रिपन के समय मे उनके सभा के कानूनी सदस्य श्री इलबर्ट द्वारा संवत् १९४० मे इलबर्ट बिल का पेश होना भारतीयो की इसी भावना का परिणाम है। इस बिल का लक्ष्य था भारतीय मजिस्ट्रेटों और जजो को किसी गोरे अभियुक्त का मुकदमा करने का अधिकार देना। वस्तुतः इस बिल द्वारा जाब्ता फौजदारी सब लोगों के लिए समान बनाने का उद्देश्य था। अँगरेजों द्वारा इस बिल के विरोध और भारतीयों द्वारा इसके समर्थन को लेकर जो वाग्युद्ध हुआ वह इतिहास प्रसिद्ध है। अंत मे सरकार ने इस बिल को वापस ले लिया। परंतु भारतीय मजिस्ट्रेटों को जूरी की सहायता से ॲंगरेज अभियुक्तो का मुकदमा करने का अधिकार दे दिया गया।

जी न मिलने में दोनो जातियो के दोषो की चर्चा करते हुए भी लेख के अंत मे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने "मुक्तकंठ" से कहा है कि जब तक ॲंगरेजो को भारतीयो से प्रेम न होगा, जब तक वे उन्हें (भारतीयो को) आदर की दृष्टि से न देखेंगे और जब तक वे अपनी विजेता की भावना तथा स्वार्थपरता

* हरिश्चंद्रचंद्रिका, खंड २, संख्या ३, दिसंबर, सन् १८७४ ई०

न छोड़ेंगे तब तक जी नहीं मिल सकता। इस निबंध द्वारा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के राजनीतिक विचारों की कुछ झलक मिल गई होगी।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का साहित्यिक के अतिरिक्त समाज-सुधारक का भी एक रूप है, इस पर संकेत हो चुका है। इस रूप का प्रभाव उनके साहित्य पर भी पडा है। स्त्री-शिक्षा का प्रचार, तथा स्त्रियों को अन्य प्रकार की सुविधाएँ देना, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन और प्रचार आदि कुछ ऐसी समस्याएँ थीं जिनका भारतेंदु युग में बड़ा प्राधान्य था। इनके हल की ओर भी लोगों की दृष्टि थी। इन विषयों को लेकर भारतेंदु-युग के सभी निबंधकारों ने कुछ न कुछ निबंध लिखे हैं। स्त्रियों की समस्याओं को लेकर भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र द्वारा 'बालाबोधिनी' पत्रिका का निकालना सभी पर प्रकट है। स्त्रियों को ही दृष्टि में रखकर उन्होंने 'भ्रूणहत्या'* नामक एक लेख लिखा था, जिसमें भारतीय जनता से पुनर्विवाह करने का निवेदन किया गया है—विशेषतः बाल-विधवा का। बाल-विधवा के विवाह का समर्थन व्यावहारिक पक्ष से करते हुए उन्होंने कहा है कि इंद्रिय-निग्रह दुःसाध्य है, अतः ऐसा होना (भ्रूणहत्या) स्वाभाविक है। इंद्रिय-निग्रह की दुःसाध्यता पर संस्कृत श्लोकों के अनेक उद्धरण भी उन्होंने दिए हैं। लेख में अनेक उदाहरण भी हैं—अपने पक्ष के समर्थन के लिए। भ्रूणहत्या को असाधारण पाप सिद्ध कर भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने भारतीय जनता से पुनर्विवाह के लिए—विशेषतः बाल-विधवा का—निवेदन किया है। इसमें यह भी कहा गया है कि ऐसी संततियों का आदर भारत में प्राचीन काल से होता आ रहा है जैसी संततियों को हम पापकर्म का परिणाम मान कर मार डालते वा मार डालना चाहते हैं। निबंध में ऐसा न करने पर हिंदुओं का मुसलमान हो जाने की आशंका का भी निर्देश है। इसमें सरकार से भी भ्रूणहत्या को उसी प्रकार रोकने का निवेदन किया गया है जिस प्रकार उसने सती-प्रथा को रोका है।

भारतेंदु-युग में प्रचलित भारत के प्राचीन गौरव की मूल प्रेरणा का उल्लेख हो चुका है। भारतेंदु श्री हरिश्चंद्र द्वारा लिखित 'ईशू खृष्ट और ईश कृष्ण'※ लेख इसी भावना से परिपूर्ण है। इसका मूल विषय है—

भारत भुजबल लहि जग रच्छित।
भारत सिच्छा लहि जग सिच्छित।

---

* वही, खंड २, संख्या ६, मार्च, सन् १८७५ ई०

※ वही, खंड ६, संख्या ७, जनवरी, सन् १८७९ ई०

भारतेंदु-युग के दूसरे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि सामाजिक निबंधकार है श्रीप्रतापनारायण मिश्र। उस युग के साहित्यकारो की दृष्टि से श्रीप्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के प्रतिनिधि स्वीकार किए जाते है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के स्वर्गारोहण पर उनके विषय मे लिखते हुए घोषित किया गया था—

"अब इस चद्र (भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र) के अस्त होने पर उनके उद्भट लेख की बची बचाई कणिका यदि कही बच रही है तो कानपुर निवासी ब्राह्मण संपादक के लेख मे देखी जाती है।"* वस्तुतः जहाँ तक निबध का सबंध है वहाँ तक विचार, विषय, शैली आदि सभी दृष्टियो से श्रीप्रतापनारायण मिश्र और भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र मे कोई विशेष अतर नही प्रतीत होता। हाँ, दोनो निबध-कारो के व्यक्तित्व मे कुछ न कुछ भिन्नता के कारण इनकी अलग-अलग विशेष-ताएँ अवश्य है। परतु यह सत्य है कि ये दोनो निबधकार एक ही युग मे विद्यमान थे, अतः युग की मूल प्रेरणाओं का प्रभाव दोनो पर समान है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधो द्वारा भारतेंदु-युगीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी परिस्थितियो तथा उनके सबध मे श्रीप्रतापनारायण मिश्र के विचारों—जो तद्युगीन मूल प्रेरणाओ से प्रभावित थे—का पूर्ण परिचय मिल जाता है। उस युग की प्रमुख सस्थाओं, जैसे, काग्रेस और आर्यसमाज की चर्चा भी उन्होंने की है। कहना न होगा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र का कोई भी ऐसा सामाजिक निबध नहीं है जिससे भारतीयता तथा देशहितैषिता की स्पष्ट ध्वनि न निकलती हो। यहाँ इसका भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि तद्युगीन भारतीय अवनति के मूल मे विदेशी-शासन की ध्वनि उनके उपर्युक्त विषयो से सबद्ध सभी निबधों मे पाई जाती है। और, श्रीप्रतापनारायण मिश्र की उक्त विषय मे इस धारणा पर किसी को सदेह भी नही हो सकता।

उस युग के सरकारी शासन के विषय मे उनकी धारणा 'इनकमटैक्स' शीर्षक निबध मे व्यक्त हुई है, जिसमे उन्होने बताया है कि देशवासियो मे आय की कमी है। किसान रात-दिन परिश्रम करके भी पेट भर भोजन नही पाते। रोजगारियो का सारा रोजगार ठप पड़ा हुआ है, क्योंकि सरकार ने सारा रोजगार अपने हाथ मे कर लिया है। जो पढ़े-लिखे है उनकी भी यही हालत है, वे बेकार है, मारे-मारे फिरते है। एक जगह खाली होने पर सत्रह टूट पड़ते है। नौकरी कर लेने पर भी खर्च भर नही जुटता, कर्ज लेना पडता है। ऐसी अवस्था मे भी हमारे ऊपर इनकमटैक्स लगाया जाता है।

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द ८, सख्या ५, स० १९४१ वि०।

अंत में श्रीप्रतापनारायण मिश्र कहते है—'......हमारा यह सिद्धांत सत्य होने मे किसी को कुछ संदेह न होगा कि जितना दरिद्र मुसलमानो के सात सौ वर्ष के प्रचंड शासन द्वारा न फैला था, उतना, वरंच उससे अत्यधिक, इस नीतिमय राज्य मे विस्तृत है ।❀

टैक्स को लेकर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'नागरी नीरद' में अनेक लेख लिखे है।

कांग्रेस के प्रति इनकी असीम श्रद्धा थी। प्रयाग और मद्रास कांग्रेस मे कानपुर के प्रतिनिधि होकर भी गए थे। कांग्रेस के विषय मे इनके विचार इस प्रकार के थे—कांग्रेस साक्षात् दुर्गाजी का रूप है, क्योंकि वह देशहितैषी देव प्रकृति के लोगो की स्नेह शक्ति से आविर्भूत हुई है।† भारतवर्ष के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती के बलिदान की भी इन्होने प्रशंसा की है।

स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन मे वृद्धि और इनकी विशिष्टता, इनके व्यापार की उन्नति तथा इनके प्रचार पर भारतेंदु-युग की भी दृष्टि थी। इस प्रकार आज का स्वदेशी-आंदोलन कोई नवीन आंदोलन नहीं कहा जा सकता। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने इस विषय मे बहुत कुछ लिखा है। 'देशी कपडा'‡ शीर्षक निबंध मे श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने कहा है कि देशी कपडा विदेशी कपड़े की अपेक्षा कही अधिक सस्ता और टिकाऊ होता है। विदेशी कपड़े की अपेक्षा यह फैंसी भी होता है। ऐसी अवस्था मे भी हम विलायती कपड़े पर टूटते है, जो दुःख की बात है। इससे हमे विदित होता है कि स्वदेशी वस्तुओ से श्रीप्रतापनारायण मिश्र को अधिक अनुराग था।

स्वदेश के व्यापार की उन्नति पर भी श्रीप्रतापनारायण मिश्र की दृष्टि है। इसी कारण वे प्रभूत द्रव्य व्यय करके सिविल सर्विस के लिए विलायत-यात्रा का निषेध करते हुए दिखाई पड़ते है। वे चाहते है कि जितना पैसा लगाकर विलायत जाया जाता है उतना पैसा यदि अपने देश मे रहकर व्यापार मे लगाया जाय तो देश का पैसा देश मे ही रह जाय, यद्यपि वे इसे स्वीकार करते हैं कि विदेशी शासन होने के कारण देश का पैसा किसी न किसी प्रकार बाहर अवश्य जायगा। साथ ही वे नौकरी का भी विरोध नही करते। 'विलायत यात्रा'⸸ शीर्षक निबंध मे, जिसमें उन्होने इन बातों का निर्देश किया है, वे यह भी कहते है कि लोग प्राचीन ग्रंथों से भारतीयो की विदेश-यात्रा के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते

❀ श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत, पृ० ७७

† वही, पृ० ८१। ‡ वही, पृ० ७९। ⸸ वही, पृ० ११२।

है, परतु उनकी दृष्टि इस पर नही जाती कि वे लोग वहाँ जाकर अपनी सभ्यता की छाप लगा देते थे, और आज यह अवस्था है कि हम वहाँ जाकर विलायती-पन मे पूर्ण रूप से गर्क होकर आते है—पूरे ईसाई बनकर आते है। इस प्रकार हम देखते यह है कि निबधकार की दृष्टि अपनेपन पर सर्वत्र है, वह भारतीयता को कही भी नहीं छोड़ना चाहता।

इसका निर्देश हो चुका है कि भारतीयो पर सास्कृतिक विजय की महत्त्वाकाक्षावश अँगरेजो ने जितने कार्य किए उनमे ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन देना प्रधान है। आज तो भारतीय सर्वतोभावेन जाग्रत् है, परतु आरभ मे इस धर्म के प्रचार के लिए अनेक मीठी छुरियो का प्रयोग किया गया था। ईसाइयो का धार्मिक आक्रमण विशेषत. बालको और निम्न वर्ग की हिंदू स्त्रियो पर होता था। व इन्हे अनेक प्रकार के प्रलोभनो द्वारा आत्मसात् करने का प्रयत्न करते थे। बालको को तो वे खिलौनो, मिठाइयो आदि द्वारा फुसलाते थे और स्त्रियो को उनके सामने काल्पनिक सुख-स्वर्ग खडा करके। श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने 'दबी हुई आग'*-शीर्षक निबंध मे ईसाइयो की इन करतूतो से भारतीयो को आगाह किया है। इसमे उन्होने कहा है कि इन लोगो ने मिशन स्कूल खोल रखा है, जिसमे ये बालको को बाइबिल वा ईसाई धर्म की शिक्षा देते है। हमारे देवी-देवताओ की भी ये पूरी निदा करते है। निबधकार ने हिंदू-मुसलमानो से अपने स्कूल खोलने का निवेदन किया है, जिनमे समुचित शिक्षा दी जा सके। कहना न होगा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र का इस प्रकार का निवेदन धार्मिक क्षेत्र मे भी भारतीयता की छाप का द्योतक है।

धर्म-भावना से प्रेरित होकर श्री प्रतापनारायण मिश्र ने अनेक निबध लिखे है। पर्व-त्योहारो पर भी अनेक निबध है, जिनका सबध धर्म-भावना से ही है। इस प्रकार के निबधो मे 'होली है'†, 'गंगा जी'‡, 'गोरक्षा'††, 'धरतीमाता'¶ प्रधान है। होली पर भी निबध लिखते समय निबधकार की दृष्टि देश-दशा पर है। इसमे कहा गया है कि बीसवीं सदी के अभागे हिंदुस्तानियो के लिए कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा आदि किसी मे कुछ तत्त्व नही है। अनेक आडबर के साथ हम देश-हित के गाने गाते है परतु स्वदेशी वस्तुओ से हमे प्रेम नही है। 'गगाजी' शीर्षक निबध मे प्राचीन तथा वर्तमान भारत मे गगा के महत्त्व की चर्चा की गई है। इस निबध द्वारा श्रीप्रतापनारायण मिश्र का गगा के प्रति

---

* वही, पृ० १३०। † वही, पृ० ९२। ‡ वही, पृ० ११८। †† वही, पृ० १२२। ¶ वही, पृ० १२४।

अतीव भक्ति का ज्ञान होता है। 'गोरक्षा' शीर्षक निबंध मे गोमाता की महत्ता बताकर इनकी रक्षा की अपील की गई है। कहने की आवश्यकता नही कि अनेक युगो से गोमाता पर सकट पडता आ रहा है। भारतेंदु-युग मे भी यह था। निबंधकार ने इसकी चर्चा अपने निबंध मे की है। निबंधकार का कथन है कि गोरक्षा की ओर तो लोगो की दृष्टि थोडी-बहुत गई है, परतु धरतीमाता की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। धरती पर उगे वृक्षो की रक्षा, उनकी वृद्धि आदि ही धरती की पूजा है और हम देखते है कि सरकार हमारे जगलो को काटती चली जा रही है। जंगल का काटना उस समय रेल-तार के प्रसार के लिए अवश्य जारी था। निबंधकार ने भारतीय जनता से कहा है कि वह सरकार से जगल न काटने का अनुरोध करे। इस निबंध मे यह भी कहा गया है कि इस समय सबसे दुखी हमारे किसान ही है।

भारतेंदु-युग जागरण-युग है, इसका निर्देश किया जा चुका है। इस युग मे जिस प्रकार लोगो की दृष्टि जीवन और समाज के अनेक पक्षों की उन्नति और उसके सुधार की ओर गई उसी प्रकार नारी की सामाजिक और बौद्धिक उन्नति और स्वतत्रता का ओर भी। और, इस ओर दृष्टि पुरुषो की ही गई। वे ही इन्हें उन्मुक्त परिस्थिति मे ले जाने के अभिलाषी थे। इसका कारण था प्राचीन भारत मे नारी की सामाजिक और बौद्धिक उन्नति और स्वतत्रता पर दृष्टि तथा अँगरेजो के सपर्क के कारण उनके यहाँ नारी की अवस्था से प्रेरणा। इसका सबसे प्रधान कारण तो यह था कि तत्कालीन पुरुषों ने इसका अनुभव किया कि वस्तुतः नारी हीनावस्था मे पडी है। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि उस समय नारी-स्वातत्र्य का आदोलन पुरुषो द्वारा ही उठाया गया, नारियो द्वारा नही, जैसा कि आज किया जाता है। जो देवियाँ आज उन्नत और स्वतन्त्र होकर पुरुषो को जतु की अभिधा देने की कृपा करती है उनकी दृष्टि भारतेंदु-युगीन इस तथ्य पर टिकनी चाहिए। श्रीप्रतापनारायण मिश्र की नारी पर अटूट श्रद्धा है। उनकी दृष्टि उसकी अवनति पर भी गई है और उसे स्वतंत्र तथा उन्नत करने पर भी। उनकी धारणा है कि सनातनधर्म, सत्कर्म, कुलाचार, सुव्यवहार, धार्मिक पर्व, त्योहार, व्रत आदि पर श्रद्धा केवल स्त्रियों मे ही विशेष देखी जाती है, पुरुषों मे कम। 'स्वतंत्र'* शीर्षक निबंध मे श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने इन विषयो की अच्छी चर्चा की है। 'पतिव्रता'† शीर्षक निबंध मे उन्होने कहा है कि पतिव्रता देवियों की संख्या आज बहुत ही कम मिलेगी। इसका कारण वे स्त्री-शिक्षा का अभाव मानते है। उनका कथन है कि स्त्रियाँ पढती

* वही, पृ० ६५। † वही, पृ० ८८।

भी हैं तो मेमो से, वे पातिव्रत की शिक्षा क्या देगी ? दूसरा कारण वे यह बताते है कि इन्हे प्रायः भद्दी पुस्तके पढने को मिलती है। इस विषय में उनका यह भी कथन है कि पुरुषो के लिए सभा, अखबार, पुस्तक आदि की सुविधाएँ है, और स्त्रियों के लिए नहीं। इस प्रकार हम देखते है कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र की श्रद्धा नारी के प्रति अटूट है और वे उसकी सामाजिक और बौद्धिक उन्नति के अभिलाषी है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र बाल-विवाह का निषेध करते है, 'बाल्यविवाह विषयक एक भोज'* से यह स्पष्ट है। 'स्वतत्र'† शीर्षक निबंध मे उन्होने अँगरेजी-पन मे ढले बाबुओ की अच्छी मरम्मत की है। इसमे उन्होने कहा है कि यद्यपि ये बाबू लोग अपने को पूर्ण स्वतंत्र समझते है तथापि न ये शरीर से स्वतंत्र है, न अपने घर से, न समाज से और न उन अँगरेजो से, जिनकी सेवा के लिए ये दिन-रात उनका मुँह ताका करते है। इनका कही भी मान नहीं है। सर्वत्र इनकी छीछालेदर है। भारतेंदु-युग मे विलायतीपन मे ढले बाबुओ पर जो व्यंग्य कसे जाते थे, उनके विषय मे समाज मे जो धारणा थी, उनका अच्छा उल्लेख उपर्युक्त निबंध मे है।

भारतेंदु-युग के तीसरे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि सामाजिक निबधकार है श्रीबालकृष्ण भट्ट। भारतेंदु-युगीन सामाजिक मूल प्रेरणाओ से ये भी उसी प्रकार प्रभावित है जिस प्रकार इनकी श्रेणी के अन्य निबधकार। श्रीबालकृष्ण भट्ट के विषय मे विशेष रूप से कहना यह है कि भारतीयता को लेकर इनकी प्रवृत्ति बडी जागरूक थी। प्रवृत्ति की जागरूकता से तात्पर्य है नवीन तथा प्राचीन के ग्रहण के लिए नीर-क्षीर विवेकिनी शक्ति का पूर्ण अवलबन, झोक या तरग मे आकर उन्हे सहसा ग्राह्य न मान लेना। भारतेंदु-युग के अन्य निबध-कारों मे से इस प्रवृत्ति की स्थिति कम मे ही मिलती है। अन्य निबधकारो मे कुछ सामाजिक अग्रगामिता का जोश दिखाई पडता है, जिसमे अपने-पराए और भले-बुरे की पहचान कुछ कम मात्रा मे रहती है। श्रीबालकृष्ण भट्ट मे यह जोश नहीं है उनमे अपनेपन को लेकर स्थैर्य है। और, इस स्थैर्य का आधार है भारत के प्राचीन आर्यत्व और ब्राह्मणत्व पर पूर्ण आस्था, हिंदुत्व और सनातनधर्म पर पूर्ण विश्वास। भारतीयता के ये ही तत्त्व उनके निबधो के आधार है। अपने पूर्वजो के उदाहरणों से उनके निबध भरे पड़े है। ब्राह्मणत्व की गौरवशाली धारणा उनके हृदय मे स्थित है और इसी कारण ब्राह्मणो की

---

* वही, पृ० ८६। † वही, पृ० ६५।

अवनति देख कर श्रीबालकृष्ण भट्ट को जितना कष्ट है उतना कष्ट शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति को हो। ब्राह्मणों की अवनति का कारण भी वे इन्ही (ब्राह्मणों) को बताते है। सनातनधर्म और ब्राह्मणत्व की भावना हृदय मे बद्धमूल होने के कारण वे भारतेंदु युग के कुछ नवीन सुधारो को ग्रहण नही करना चाहते, जिन सुधारो को तद्‌युगीन सामाजिक निबंधकार सहज ही ग्रहण कर लेते है। स्वामी दयानंद के आर्यसमाजी आंदोलन की सामयिकता और सार्थकता पर विश्वास रखते हुए भी वे उसके द्वारा विहित जाति-पाँति-तोडक प्रवृत्ति और विधवा-विवाह-विधान का समर्थन करते हुए नही दिखाई पडते। इस विवेचना द्वारा हम कहना यह चाहते है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट के निबंधो की आधार-भूमि है सनातन-धर्म और ब्राह्मणत्व की भावना। ब्राह्मण-वर्ण मे होने के कारण ब्राह्मणत्व के विशेष आग्रह पर श्रीबालकृष्ण भट्ट पर कोई उँगली उठा सकता है। पर यह उचित न होगा, क्योकि ब्राह्मणों की स्वार्थमयी प्रवृत्ति की निंदा वे स्वतः करते है। भारतेंदु युगीन सभी सामाजिक विषयो की चर्चा उस युग की मूल प्रेरणाओ के पूर्ण प्रभाव के सहित उनके सामाजिक निबंधो मे प्राप्त होती है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट की निबंध प्रस्तुत करने की पद्धति की एक प्रवृत्ति पर यही निर्देश कर दिया जाय। सामाजिक निबंधो मे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्याओ को स्पष्टतः समुख रख देने की जितनी प्रवृत्ति इनके निबंधो की है उतनी उन समस्याओ के हल के लिए सुझाव पेश करने की नहीं। सुझाव पेश करनेवाली प्रवृत्ति है अवश्य, पर बहुत ही कम। समस्याओ के चित्र खीच देने के पश्चात् ये 'तथास्तु' 'भवतु' कह कर प्रायः निबंध का अंत कर देते है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट को लेकर ब्राह्मणत्व की चर्चा ऊपर हुई है। प्राचीन ब्राह्मणों के विषय मे उनके हृदय मे बडी ही भव्य भावना स्थित है। प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन मे ब्राह्मणो की शक्ति से न निबंधकार ही अनभिज्ञ है और न अन्य व्यक्ति ही। श्रीबालकृष्ण भट्ट का कथन है कि आर्यो का संबंध राजनीति से भी था, इसके उदाहरणस्वरूप वे कुछ वैदिक मंत्र भी उद्‌धृत करते है। कई युगो तक ब्राह्मणों को ही वे प्राचीन भारत की राजनीति का कर्णधार स्वीकार करते है और उनकी धारणा है कि जब से ब्राह्मण भारत की राजनीति से अलग हुए तभी से भारत की अवनति का आरंभ हुआ। ब्राह्मणों के इस महत्त्व की चर्चा के साथ ही उनकी दृष्टि ब्राह्मणों की स्वार्थ-परता और दीन-हीन अवस्था पर भी है। ब्राह्मणों की स्वार्थपरता के विषय मे वे कहते है कि दक्षिणा के लोभ मे फँस आप बिगड़े सो बिगड़े हिंदू

धर्म को भी अबतर कर दिया। श्रीबालकृष्ण भट्ट की यह धारणा थी कि यदि ब्राह्मण चेत जायँ तो भारत तुरत ही स्वतंत्र हो जाय। ब्राह्मणो के विषय मे उनकी इस प्रकार की धारणाएँ अनेक निबधों मे व्यक्त है। विशेपतः "भिन्न भिन्न मतमतांतरो का राजनैतिक विषयो से लगाव"* और "हमारे सब गुण क्यो फीके हो रहे है'† निबधो मे ब्राह्मणो की गिरी हालत पर निबंधकार सर्वत्र दुखी दिखाई पड़ता है। इस कारण वह इनके सुधार के लिए भी मार्ग-निर्देश करता है। उसका कहना है कि दानी सुपात्र ब्राह्मणों को दान दें, प्राचीन ऋषियो की प्रणाली के अनुमार देश भर में ब्राह्मण तैयार किए जायँ। बाल-निवाह रोक दिया जाय। ब्राह्मण भी सासारिक विषय-वासना, भोग-तृष्णा आदि से हटे। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट की ब्राह्मणो पर विशेप दृष्टि का कारण ब्राह्मणो की ही उन्नति से नही, प्रत्युत भारत राष्ट्र की उन्नति से भी है, क्योकि उनकी मान्यता है कि ब्राह्मण कई युगो तक प्राचीन भारत राष्ट्र के कर्णधार थे और आज भी यदि वे चेत जायँ तो भारत का उद्धार हो जाय। अभिप्राय यह कि जातीयता पर दृष्टि रखकर उन्होने इन बातो को नही कहा है, वरन् भारत की स्वाधीनता पर दृष्टि होने के कारण ऐसा कहा है। यहाँ एक और बात स्मरण रखने की है। वह यह कि ब्राह्मणो की इस अवस्था का सबध भी भारतेंदु-युग की सामाजिकता से है, जिस (अवस्था) का आरभ कई सौ वर्ष पूर्व से ही हो गया था। भारत मे जैसे निम्न वर्ग के उत्थान की एक समस्या है वैसे ही उच्च वर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्ग) के उत्थान की भी। अतः इस पर भी विचार आवश्यक है। इस ओर श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि पूर्णतः गई है, इसे हमने देखा है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के हृदय में स्थित भारत की राष्ट्रीय भावना तथा दासता के प्रति चिता की झलक उपर्युक्त मीमासा से स्पष्टतः मिलती है। वे भारत के जीवन तथा उसके समाज के कार्य-व्यापारों को राजनीतिक आधार पर स्थित देखना चाहते है। 'हमारे सब गुण क्यो फीके हो रहे हैं' शीर्षक निबध मे वे काग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए दिखाई पडते है। इसके वार्षिक अधिवेशनो की सार्थकता वे स्वीकार करते है। स्वामी दयानद के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है, जिन्होने अपना आदोलन राजनीतिक आधार पर चलाया था। परतु उनका कथन है कि बीच मे ही खडन-मडन मे फँस जाने

---

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द २२, सख्या ५।

† वही ,, २७, ,, ५।

के कारण वे कम सफल रहे। इस निबंध के अंत में उन्होंने कहा है—अब होना यही चाहिए कि हमारा धर्म, कर्म, आचार, विचार, रीति-रसम, खेल-कूद, तेवहार-बार सब राजनैतिक आधार पर रक्खे जायँ।

राजनीति को लेकर हृदय में इतनी उच्च भावना रखते हुए भी श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि परतंत्र भारत की यथार्थ परिस्थिति पर भी है। 'अँगरेजी तालीम और जातीय शिक्षा'* शीर्षक निबंध में उनकी दृष्टि इस पर है कि हमें अँगरेजी शिक्षा तो मिलती है परंतु जातीय शिक्षा (नेशनल एजुकेशन) नहीं मिलती, जिससे हम अपने देश-हित की बात सोच समझ सकें। 'हिंदू जाति का स्वाभाविक गुण'† शीर्षक निबंध में उनकी दृष्टि इस पर भी है कि हिंदू थोड़े उपकार को बहुत मानते हैं। उनके इस गुण को अकबर ऐसे सम्राट् ने पहचाना था। अँगरेज नहीं पहचान सके, इसका कारण उनकी पूर्ण स्वार्थपरता है। उनकी दृष्टि हिंदुओं की धर्मभीरुता और आध्यात्मिकता पर भी है, जिसे वे गुलामी का कारण बताते हैं। कहते हैं—

प्रत्येक देश की कौम के इतिहासों को पढ़ इनसे मिलाइए तो इसकी टटोल भरपूर आपको हो जायगी और हमारा कहना कहाँ तक सच है इसका अंदाजा आपको हो जायगा। थोड़े उपकार को भी बहुत कर माननेवाले इस जगती तल में दूसरे नहीं हैं। अकबर ऐसे कई एक मुसलमान बादशाहों ने इनमें इस गुण को पहचान लिया था और तदनुसार इनके साथ वर्ते भी जिसका फल यह हुआ कि ये प्राणपन के साथ इनकी फरमाबरदारी से नहीं चूके। हमारे सामयिक शासनकर्ता हर तरह पर बुद्धिमान होकर भी न जाने क्या कारण है कि सौ बरस से ऊपर इनको यहाँ राज्य करते बीत गया सब भाँति इनकी परख भी न जाने कै बार कर चुके और पूरी तरह इन्हें राजभक्त पाया तो भी इन्हें न पहचान सके। सच है स्वार्थ का लोभ ऐसा ही प्रबल होता है जिसकी प्रेरणा से मनुष्य स्वार्थांध हो उचित को अनुचित, अनुचित को उचित मानने लगता है।...धर्म भीरु होना भी इस जाति का एक स्वाभाविक गुण है। सब जाय पर परमार्थ और परलोक न बिगड़ने पावे। इसी बुनियाद पर अत्याचारी से अत्याचारी मुसलमान बादशाहों की इताअत करते ही आए तब उनके मुकाबिले तो इनका बहुत दूर तक धर्मराज्य माना गया है।

* वही, जिल्द २६, संख्या ४।

† वही, जिल्द २२, संख्या १०, ११, १२।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'* शीर्षक निबंध मे उनकी दृष्टि इस पर भी है कि भारत के शासनकर्ताओ का ढग ऐसा नहीं है कि हम उनसे न्याय पाने की आशा करे। उनकी नीति हमें बलवान् बनाकर शासन करने योग्य नहीं बना सकती। उपर्युक्त निबंध मे उन्होने कहा है कि सरकार हमारी माँग की पराकाष्ठा देखकर हमे फुसलाने के लिए कोई छोटी-सी वस्तु दे देती है। ऐसा करने मे भी उनकी नीति भारत का पैसा विदेश भेजने की रहती है। खेती का लगान कम करने. उचित शिक्षा की अड़चनो को हटाने, शासन के काम में हमारी राय लेने, बड़े बड़े ओहदे हमको देने मे हमारी भलाई है। पर ऐसा किया नहीं जाता। दूसरे, तीसरे वर्ष अकाल पड़ता है। इसका कारण हमारी दरिद्रता है।इस (दरिद्रता) को सरकार दूर नहीं करना चाहती। अँगरेजो को इसका प्रमाण मिल चुका है कि हम राजभक्त है, पर अपनी स्वार्थपरतावश वे हमारी हालत नहीं सुधारना चाहते। इस प्रकार हमे विदित होता है कि हमारी यथार्थ राजनीतिक परिस्थिति, उसके कारण तथा हमारी विवशता पर भी उनकी दृष्टि है। इस विषय मे श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचार कितने यथार्थ और उचित है, इस विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

भारतेंदु-युगीन वाणिज्य-व्यवसाय, कारीगरी, नौकरी, खेती आदि की गिरी अवस्था पर भी श्रीबालकृष्ण भट्ट का ध्यान गया है। कहना न होगा कि उस समय उपर्युक्त सभी वस्तुओ की अवस्था बडी शोचनीय थी और शासनकर्ता की दृष्टि इन पर बिलकुल न थी। अपने यहाँ की वस्तुओ के प्रचार के लिए भारतीय उद्योग-धधे किस प्रकार नष्ट किए गए थे, इसका परिचय सभी को है। इनके नष्ट हो जाने से कितने आदमी कितनी बुरी तरह बेकार हो गए थे, इसका भी परिचय सभी को है। जब उद्योग-धधे ही नष्ट कर दिए तब वाणिज्य कैसे टिके। सारा धन विदेशी वस्तुओ के प्रचार के कारण विलायत खिंचा जाता था। उस युग मे नौकरी करनेवालो की भी बुरी हालत थी। नौकरी कर केवल यूरोपियन और यूरेशियन प्रसन्न थे, भारतीय नहीं। खेती की अवस्था भी बुरी थी। बहुत अधिक खेती प्रायः दैवी कोप से नष्ट हो जाती थी। इसके अतिरिक्त पैदावार का आधा से अधिक रिन-पोत मे चला जाता था। इस प्रकार उस युग मे वाणिज्य, व्यवसाय, नौकरी, खेती आदि की भी बुरी हालत थी। श्रीबालकृष्ण भट्ट ने इनकी चर्चा 'रुपया पैदा होने के तीन तरीके'† शीर्षक निबंध मे किया है।

---

* वही, जिल्द २८, संख्या ६।

† वही, जिल्द २७, संख्या ६।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के भारतीय आधार पर पूर्णतः टिके विचारों की चर्चा की जा चुकी है। ऐसी अवस्था में दूषित आधुनिक वा अँगरेजी सभ्यता से उनका मन न मिलना स्वाभाविक ही है। उनकी धारणा है कि भारत की ही प्राचीन सभ्यता नहीं, प्रत्युत उसी के समान सभी प्राचीन देशों की सभ्यता की दृष्टि सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति पर रहती है, परंतु आज की सभ्यता इनकी उन्नति में पूर्णतः बाधक प्रमाणित हो रही है। अँगरेजी शिक्षा और सभ्यता पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अँगरेजी शिक्षा की अपेक्षा अँगरेजी सभ्यता दूषित है। इस सभ्यता के प्रभाव से भारतीयों में अन्याय, बाहरी टीम टाम, विषय-वासना, स्वार्थपरता आदि दोषों के आगमन की चर्चा श्रीबालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों में की है।

स्वदेश के व्यक्तियों और वस्तुओं से दुराव-छिपाव और उनके अनुपयोग तथा विदेशी लोगों और वहाँ की तडक-भडकभरी वस्तुओं से मेल-मिलाप और उनके उपयोग पर श्रीबालकृष्ण भट्ट दुखी हैं। अपने भारतीय समाज की उन्नति पर ध्यान न देकर विदेश की सभ्यता की ओर लपकनेवालों पर वे खूब व्यंग्य कसते हुए दिखाई पडते हैं। ईसाई बननेवालों, आचार व्यवहार आदि से अँगरेज बननेवालों, आर्यसमाजी बननेवालों, विधवा-विवाह करने-वालों, विलायत जाकर मेमों से विवाह करनेवालों, अनेक विवाह कर बहुत-सी संतान पैदा करनेवालों और पुरानी रीति-नीति को नष्ट करनेवालों पर वे कड़े व्यंग्य कसने से बाज नहीं आते। महिला-स्वातंत्र्य के विषय में वे मध्यम मार्ग का अवलंबन करना चाहते हैं। वे महिलाओं को न अति आधुनिक बनाने के पक्ष में हैं और न इसी पक्ष में हैं कि वे घर के भीतर रहकर सड़ें। सामाजिक जीवन से संबद्ध श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचार इसी प्रकार के हैं, जो 'सभ्यता पिशाची सर्वनाशकारी हुई,'* 'अँगरेजी शिक्षा और अँगरेजी सभ्यता,'† 'प्रभवार्थाय लोकस्य धर्मं प्रवचनं कृतम्। यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः,'†† और 'महिलास्वातंत्र्य'‡ शीर्षक निबंधों में व्यक्त हुए हैं।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेंदु-युग के चौथे प्रतिनिधि और प्रसिद्ध सामाजिक निबंधकार हैं, जिन पर विचार करना शेष है। श्रीप्रताप-नारायण मिश्र पर विचार करते हुए इसकी चर्चा की जा चुकी है कि इनमें तथा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की भाषा, शैली आदि में एकता का संबंध जोड़ा जा

---

* वही, जिल्द २५, संख्या १–२। † वही, जिल्द २८, संख्या ४।
†† वही, जिल्द २७, संख्या १–२। ‡ वही, जिल्द २३, संख्या ७–८।

सकता है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' तथा भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की भाषा, शैली आदि मे तो कोई ऐक्य स्थापित नहीं किया जा सकता, हाँ, वे वेष-भूषा, व्यवहार आदि मे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र बनने मे प्रयत्नशील रहते थे, ऐसा सुना जाता है। किसी युग की सामाजिक प्रेरणाओं से कोई रचनाकार तो बच ही नही सकता, ऐसी स्थिति मे भारतेंदु-युग की प्रायः सभी सामाजिक प्रवृत्तियो की छाप श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबधो मे प्राप्त होती है। परतु इनकी रुचि तद्युगीन राजनीति की ओर विशेष झुकी जान पडती है, जिसकी छाया इनके निबधो मे विद्यमान है। काग्रेस द्वारा ये प्रभावित भी विशेष थे। अपनी कविताओ द्वारा इन्होने दो-एक काग्रेस के अधिवेशनो के अवसर पर तथा अलग से भी काग्रेसी नेताओ का स्वागत किया था। एकाध बार इनके नाटक भी इस अवसर पर खेले गए थे। अभिप्राय यह कि इन पर काग्रेस का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है, जो उस युग की प्रधान राजनीतिक सस्था थी। तद्युगीन प्रायः सभी राजनीतिक प्रमुख घटनाओ तथा आदोलनो की चर्चा इनके निबधो मे हुई है। इस प्रकार राजनीति से ये विशेष प्रभावित प्रतीत होते है और यहीं ये अपने युग के अन्य निबधकारो से अलग किए जा सकते है। धर्म, स्वदेश-भावना, अँगरेजी वा आधुनिक सभ्यता आदि उस युग के विषयो पर भी इनके निबध मिलते है।

काग्रेस और राजनीति की ओर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि विशेष थी, इसकी चर्चा अभी की गई है। 'नेशनल काग्रेस की दुर्दशा'* शीर्षक निबध मे इन्होने सूरत काग्रेस के अवसर पर गरम और नरम दल के नेताओ के झगडे की चर्चा करते हुए इन पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया है। निबधकार की दृष्टि दोनों दलो के नेताओ के भले-बुरे कार्य-कलाप पर है। इसमे एक-एक नेता के भी कर्तव्याकर्तव्य की बात कही गई है। निबध मे फूट के बुरे परिणाम पर श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि जाती है और ये इसे भारत का दुर्भाग्य मानते है। यहाँ स्मरण रखने की बात यह है कि निबध-कार की दृष्टि राजनीति के साथ ही धर्म और ईश्वर पर सर्वत्र है। यह राजनीति का ऐसा प्रेमी नहीं है, जो कर्म-कर्म की ही पुकार मचाता है और इस शोरगुल मे धर्म और ईश्वर का ध्यान भूल जाता है।

'भारतीय प्रजा के दुःख की दुहाई और ढिठाई पर गवर्नमेट की कडाई'† शीर्षक निबंध मे श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने वंगभंग के अवसर पर

---

* आनद कादबिनी, माला ७, मेघ १०, ११।

† वही, माला ७, मेघ ३-६।

अँगरेजी शासन-नीति की चर्चा की है। भारतीय इतिहास मे वग-विच्छेद की घटना प्रसिद्ध है। इस प्रसंग को लेकर अँगरेजी शासक द्वारा उस समय यह कहा गया था कि बंगाल जैसे बड़े प्रात की सुव्यवस्था एक लाट द्वारा नहीं हो पाती, पूरबी बंगाल की बुरी अवस्था पर अब तक किसी लाट की दृष्टि नहीं जाती रही है। अतः इस प्रात को दो भागों मे विभक्त करके इसके शासन का सुप्रबध करना आवश्यक है। सन् १९०१ से ही इस प्रकार का प्रस्ताव हो रहा था, परतु कुछ निर्णय नहीं हो पाया था। लार्ड कर्जन ने ऐसा कर देना उचित समझा, और सन् १९०५ मे पूरबी बगाल का प्रात अलग बनाया गया और उसके शासन-प्रबध के लिए एक लेफ्टिनेंट गवर्नर निर्धारित कर दिया गया। कर्जन साहब के इस कार्य से बगाली बड़े ही असतुष्ट हुए और उन्होंने कुछ हिंसात्मक प्रणाली भी ग्रहण की। यह आदोलन विकट रूप धारण करता गया। अत मे यह आदोलन सरकार द्वारा दबा तो दिया गया पर बंगाली प्रजा असतुष्ट ही बनी रही। सन् १९११ मे दिल्ली-दरबार के अवसर पर सम्राट् की आज्ञा से बगाल का पुनर्संघटन हुआ। इस आदोलन के मूल मे बंगालियों की राष्ट्रीय एकता की भावना निहित थी। उनकी दृष्टि इस बात पर थी कि इस प्रकार हमारे प्रात का विभाजन कर के सरकार हमारी राष्ट्रीय एकता नष्ट करना चाहती है। भाषागत एकता पर आक्रमण की आशका भी इससे उनमे उत्पन्न हुई। बगालियो का पक्ष वस्तुतः सत्य था। हमारी दृष्टि इस पर भी रहनी चाहिए कि स्वदेशी आदोलन की प्रेरणा भी येनकेनप्रकारेण वग-विच्छेद के आदोलन से मिली थी। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' इन आदोलनों के विषय मे अपनी राय उपर्युक्त निबध में इस प्रकार प्रकट करते है—

चिर दिनो मे अपनी अनेक आवश्यकताओं की पुकार का कुछ भी फल न पाकर वंग-भग विचार के संग अनेक सभा-समितियों द्वारा यथाविहित घोर प्रतिवाद और प्रार्थना कर इस सामान्य बात पर भी गवर्नमेंट को अपनी दुहाई का तिरस्कार करते देख, जिसमे किसी नवीन अधिकार वा सुविधा की प्राप्ति न था वरच एक नवीन कठिनाई और जातीय अवनति की अटल आशा थी, वगीय प्रजा ने अति अनमनी और अधैर्य हो रूठकर स्वदेशी स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार का व्रत धारण किया, जो कोई विशेष अन्यथाचार नहीं कहा जा सकता। प्रतीत ऐसा होता है कि निबंधकार की सहानुभूति इस आदोलन के प्रति है। वह यह स्वीकार करते हुए भी कि बगालियों ने कुछ उग्र रूप धारण किया सरकार द्वारा उन्हें दबाने के लिए जो नीति बरती गई वह सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उसे अनुचित

स्वीकार करता है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पूरबी बंगाल में गोरखा सेना तथा मुसलमानों के अत्याचार को अमानुषिक बताया है। इस अवसर पर अन्य प्रांतों मे भी सरकारी शासन द्वारा जो गड़बड़ियाँ उपस्थित की गई थी उनकी भी चर्चा निबंध मे हुई है। निबंधकार ने सरकार से अपने गुप्तचरों तथा एंग्लोइंडियन समाचारपत्रों का मुँह बंद करने को कहा है, जो व्यर्थ ही भारतीय प्रजा पर दोषारोपण करके विष वमन करते है। उसने कहा है कि सरकार पक्षपात दूर करे, न्याय का अनुसरण करे, प्रजा को मना ले, उग्र नीति का अवलंबन न करे,—देश में हाहाकार मच रहा है। उसकी नीति से प्रजा को दृढ़ निश्चय होता जा रहा है कि वह हमारे दुःख-सुख की चिंता छोड़ अपने स्वार्थ-साधन में दत्तचित्त है।

भारतीय स्वातंत्र्य पर विचार करनेवालों के समुख हिंदू-मुसलिम एकता का भी एक प्रधान प्रश्न आरंभ से ही रहा है। इनसे एक होने की प्रार्थना बहुत दिनो से लोग करते आ रहे थे। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'भारतीय प्रजा के दो दल'* शीर्षक निबंध मे इनसे यही प्रार्थना की है। यह सभी पर विदित है कि इन दोनो जातियो का प्रश्न बड़ा जटिल है। कारण यह है कि इसमे दो तत्त्व मिले है, एक धार्मिक और दूसरा राजनीतिक, और ये दोनो तत्त्व अपने-अपने रूप मे बड़े विचित्र हैं। ऐसी स्थिति मे इनमे ऐक्यभावना तभी स्थापित हो सकती है जब ये दोनो एक दूसरे की धार्मिक तथा राजनीतिक सुविधा-असुविधा पर दृष्टि रखे और उदारता का व्यवहार करे। निबंध मे सरकारी नीति—फूट उपजाओ और शासन करो—पर भी लेखक का ध्यान गया है। इसका ध्यान इस पर भी गया है कि मुसलमान हिंदुओं से अलग होकर राजनीतिक दृष्टि से अपनी हानि बराबर करते आ रहे है। इस प्रकार हमे विदित होता है कि श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि भारतीय राजनीति पर विशेष है। इसके साथ ही धर्म पर भी उनकी दृष्टि बराबर है। निबंध के अंत मे हिंदू और मुसलमान से इस प्रकार निवेदन किया गया है।—

निदान अब वह समय है कि भारत की प्रजा मे दो दल अथवा कई दल क्यो न हो, परंतु उन्हे परस्पर का द्रोह और विरोध भूल करते हुए ऐक्य उत्पन्न कर आपस मे मिल कर देश के हित साधन मे संलग्न होना चाहिए। क्योंकि इसी कारण भारतवर्ष की ऐसी हीन दशा हुई है। और जब तक यह विरोध यो ही बना रहेगा इसके उद्धार का कोई उपाय न होगा।

---

* वही, माला ६, मेघ ४।

सुतराम् हिंदू और मुसलमान दोनो दल को अब अपने-अपने आग्रह को शिथिल करके परस्पर स्नेह वर्धन मे यत्नवान् होना चाहिए।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के 'विदेशीय शर्करा वा विलायती शकर'* शीर्षक निबंध मे उनकी धार्मिक भावना व्याप्त है। इसमे कहा गया है कि बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्ति बाजार की फलाहारी मिठाई खाते हैं; परतु वे नहीं जानते कि उसकी शर्करा प्राचीन भारत का शकर नहीं है। भारतीय शकर भी रहता है तो उसमे विलायती शर्करा मिला दी जाती है, जो हड्डी और गोरक्तादि से स्वच्छ होती है। उपर्युक्त निबंध मे केवल शर्करा को ही लेकर खान-पान की पवित्रता पर दृष्टि रखी गई है जिसकी प्रेरणा धार्मिक है।

अँगरेजी वा आधुनिक सभ्यता के संपर्क से भारतीयों के जीवन मे जितने अवाछित परिवर्तन हुए हैं उन पर भारतेंदु-युग के सभी सामाजिक निबंधकारो की दृष्टि है। उस युग के सभी निबंधकार इस परिवर्तन की अनुपयुक्तता सिद्ध करते है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी इस विषय मे उपर्युक्त विचार ही प्रकट किए है, जो 'पुरानी का तिरस्कार और नई का सत्कार'† शीर्षक निबंध मे देखे जा सकते है। उन्होने इसमे कहा है कि पुरानी का तिरस्कार और नवीन का सत्कार स्वाभाविक है, परतु उन लोगो की बुद्धि मारी गई जान पड़ती है जो आधुनिक फैशन के चक्कर मे पडकर निकम्मी, ओछी और विदेशी नवीन वस्तुओं का सत्कार करते हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि इस निबंध मे लेखक की दृष्टि भारतीयो द्वारा प्राचीन प्रसाधनो के त्याग और नवीन के ग्रहण पर ही है। वह विदेशी प्रसाधनो को भारतीय जलवायु के नितात विरुद्ध सिद्ध करता है, और इनसे दूर रहने को सजग करता है। इस निबंध की विशेषता यह है कि इसकी सभी बातें हास्य-व्यग्य और विनोद की पद्धति पर कही गई है। एक उदाहरण लीजिए—

सारांश, आज सभी हिंदोस्तान निवासी, चाहे वह आर्य सतान हो वा मुसलमान, हिंदोस्तानी कहलाते लजाते हैं, सफेद साहब बनने की लालसा से अपनी पुरानी चाल-चलन को छोडने और दूसरो को ग्रहण करने मे कुछ भी संकोच नही करते। उन्हें दूसरो की अच्छी बुरी की कुछ भी तमीज नहीं, उन्हे तो सीधा आँख मूँद यही करना भाता है कि जो आज श्वेतांग लोग करते है। ये औंधे खोपडी के लोग यह कदापि नहीं विचारते कि वे ऊष्ण प्रधान देशवासी है। अतः उनका अनुकरण हमे कदापि सुविधाजनक नहीं।·· ····इतना नही सोचते कि आजकल इस पहनावे मे पाल मे पडे, आम से पक कर घुल जायँगे।

---

* वही, माला ६, मेघ ७। † वही, माला ७, मेघ १२।

भारत में विदेशी अन्य वस्तुओ के प्रचार की चर्चा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'स्वदेशीय वस्तु स्वीकार और विदेशीय बहिष्कार'* शीर्षक निबंध मे की है। इसमे इन्होने कहा है कि विदेशी सभ्यता के प्रचार के कारण भारत का पचतत्त्व भी परिवर्तित हो गया है। कोई भारतीय वस्तु दिखाई ही नही पड़ती। शिक्षा दीक्षा, विद्या-बुद्धि, गति-मति, रीति-नीति, प्रीति, चाल-ढाल, खान-पान, व्यायाम, विश्राम, नाम, काम आदि सब विदेशी हो गये है। इसी कारण स्वदेशी वस्तुओ का मिलना दुर्लभ हो गया है। जिन वस्तुओ का हम उपयोग करते है वे भारत मे भी बनती है, परतु हमारी प्रवृत्ति कुछ ऐसी परिवर्तित हो गई है कि वे हमे नही भाती। इगलैड, अमेरिका, चीन, जापान, फ्रास, ईरान आदि की वस्तुएँ ही हमे भाती है। इसका कारण अँगरेजो का अनुकरण है। इस पर हम ध्यान नही देते कि अँगरेज विदेश मे रहकर भी अपने देश की वस्तुओ का उपयोग करते है और हम इसके ठीक विपरीत काम करते है। निबधकार की दृष्टि मे स्वदेशप्रेम, स्वदेशोद्धार और स्वदेशी शिल्पकला की उन्नति करना भारतीयो के लिए आवश्यक है। उसका यह भी कहना है कि स्वदेशी वस्तु यदि मँहगी और निकम्मी भी मिले तो हम उसे ही खरीदे, विदेश की वस्तु को अच्छी होने पर भी न मोल ले। निबधकार की यह भी सलाह है कि हम अपने यहाँ की निकम्मी वस्तु को सुदर करने और जो वस्तु न बनती हो उसे बनाने का प्रयत्न करे। इस निबध द्वारा श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का स्वदेश और स्वदेशी प्रेम पूर्णतः जाना जा सकता है। एक जगह कहते है—

"जो वस्तुएँ हमारे यहाँ बनती है, यदि वे विदेशी पदार्थों सी सुंदर और सस्ती नहीं है तो उन्हे तत्तुल्य करने की चेष्टा करनी चाहिए न कि उनका सर्वथा अभाव। उसका एकमात्र उपाय और कारण केवल उसमे निज रुचि का स्थापन मात्र है। इसी भाँति जो वस्तुएँ अभी देश मे अलभ्य हैं उनको देश में निर्माण करने की चेष्टा करना परमावश्यक है। जिसके अर्थ बहुत कुछ आत्मत्याग, देशानुराग, दृढ़प्रतिज्ञा आदि गुणों की आवश्यकता है। "देश के अग्रसरो को बहुत ही सुसमाहित हो इस समय कार्यानुसरण करना चाहिए और सर्वसामान्य भारतीय प्रजा को प्रमादशून्य स्वदेशानुराग का व्रत लेते हुए अपने उचित उद्योग मे संलग्न होना चाहिए जिससे अवश्य ही कल्याण की आशा है। क्योकि ईश्वरानुग्रह से अब देश सुषुप्ति अवस्था का विसर्जन कर बहुत कुछ चैतन्यता लाभ कर चला है।

---

* वही, माला ६, मेघ ८।

भारतेंदु-युग के प्रसिद्ध और प्रतिनिधि निबंधकारों की इस मीमासा का लक्ष्य उस युग के निबध की सभी प्रवृत्तियों को, जो तद्‌युगीन सामाजिक प्रेरणाओं से प्रभावित है, दिखाना है। इस मीमासा का लक्ष्य यह भी दिखाना है कि उस युग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि नेताओं के जो पक्ष थे वा हो सकते थे वे ही उस युग के उपर्युक्त प्रधान निबधकारों के भी है, अर्थात् अपने क्षेत्र मे जो कार्य उस युग के नेताओं ने किया वही कार्य उपर्युक्त प्रधान निबध-कारों ने भी अपने क्षेत्र मे किया। इस प्रकार इसी मीमासा का लक्ष्य यह भी दिखाना है कि जीवन और समाज को जाग्रत् करने मे हिंदी के भारतेंदु-युगीन निबधकारो का भी प्रधान हाथ रहा है।

भारतेंदु-युगीन सामाजिक निबधकारो ने समाज के बहुत ही व्यापक दायरे पर दृष्टि रखकर उस (समाज) के सबध मे जो बाते कही है वे अभिव्यक्ति की सीधी शैली (डिरेक्ट स्टाइल आव् इक्स्प्रेशन) मे कही है। इन बातो के कहने में 'कहना' ही उनका लक्ष्य है। इनकी अभिव्यक्ति मे कहीं भी साहित्यिक चमत्कार दिखलाकर यशस्वी बनने की वृत्ति उनमे दृष्टिगत नहीं होती। इस अभिव्यक्ति की सीधी शैली द्वारा ज्ञात होता है कि इन बातों को कहने के लिए उनकी बुद्धि, हृदय, मन, प्राण मे बहुत बडी ईमानदारी थी, इन्होंने इनकी अभिव्यक्ति अत्यावश्यक मानी, इन बातो को बिना अभिव्यक्त किए जैसे उनका मन ही न मानता। मतलब यह कि जीवन तथा समाज मे उस युग में जो त्रुटियाँ थी उनका बार-बार उल्लेख कर, उन पर अजस्र आघात कर वे उस युग के लोगों को इनके प्रति जागरूक बना इनको समाज से निर्मूल कर देना चाहते थे। इस प्रकार तद्युगीन जीवन तथा समाज मे मंगल की स्थापना कर उनकी अदम्य अभिलाषा के प्रति रचमात्र भी सदेह नहीं किया जा सकता।

तद्युगीन सामाजिक निबधकारों के कहने का ढंग चाहे साहित्य न होकर सामान्य हो, उनके निबंधों में उद्धरण और उदाहरण चाहे नित्य जीवन और समाज मे चलनेवाले और हमारे जाने-पहचाने हों, जिन्हें आज का निबधकार अपनी रचनाओं मे देना अपनी हेठी समझता हो, उनके निबधों मे विद्या-बुद्धि की चाहे सुष्ठु भूमिका के दर्शन कम मिले, आज का निबधकार जिस पर सबसे पहले दृष्टि रखकर रचना के लिए अग्रसर होता है, फिर भी जीवन तथा समाज मे शिव की स्थापना के लिए अपनी अभिव्यक्ति पद्धति से, जो तब तक चाहे अपूर्ण ही रही हो, उन्होने निस्सकोच सारी बाते कह डाली है। यह उनके हृदय, मन, बुद्धि की ईमानदारी है। एक साहित्यकार के असली होने का जो प्रथम लक्षण है।

५

साहित्यिक निबंध

विवेचन की सुविधा के लिए ही भारतेंदु-युग के निबधों को दो श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया था—अर्थात् सामाजिक श्रेणी में और साहित्यिक श्रेणी मे। उस युग के सामाजिक श्रेणी के निबंधों की मीमासा हुई है; अब शेष है साहित्यिक श्रेणी के निबधो की मीमामा। यहाँ हम इसे स्पष्ट कर देना चाहते है कि उस युग के सामाजिक तथा,साहित्यिक निबंधों के बीच कोई ऐसी रेखा नहीं खींची जा सकती जिससे वे दोनों बिलकुल अलग हो जायँ। अभिप्राय यह कि दोनो का सबध एक दूसरे से है। उस युग के सामाजिक निबंध प्रायः विचारात्मक श्रेणी मे आते है, जिनमे यत्र-तत्र भावात्मकता का गहरा पुट है; जिस पुट का संबध निबधकार के भावो से तो है ही, पाठक वा श्रोता पर प्रभाव डालने के लक्ष्य से भी उस (पुट) का सबध है। ऐसी स्थिति में जहाँ-जहाँ भावात्मकता की निहिति उनमे है वहाँ-वहाँ साहित्यिकता भी अवश्य ही आ गई है। इसके अतिरिक्त सब से बडी बात तो यह है कि उस युग के सामाजिक निबंध भी साहित्यिक व्यक्तियो द्वारा प्रस्तुत किए गए है और सच्चे तथा पक्के साहित्यिक व्यक्तियो द्वारा प्रस्तुत किए गए है। भाषा और विधान-पद्धति की दृष्टि से तो इस श्रेणी के निबधो मे साहित्यिकता है ही। यहीं यह भी कह दें कि इस श्रेणी के निबंधों मे इतनी ही साहित्यिकता की गुजायश भी है। इसका कारण यह है कि सामाजिक निबधो मे निबधकार की दृष्टि निबध-कला पर नहीं रहती। उसमें तो वह अपने विचारों को सीधे और स्पष्ट रूप से प्रभावशाली पद्धति द्वारा पाठक और श्रोता तक पहुँचाना भर चाहता है। जैसे सामाजिक निबंधों का सबध साहित्यिक निबधों से है वैसे ही साहित्यिक निबधों का सबध भी सामाजिक निबधो से है, अर्थात् भारतेदु युग के साहित्यिक निबधों में भी तत्कालीन समाज की गतिविधि का चित्रण प्रायशः मिलता है। स्मरण यह रखना है कि इस

सामाजिक गतिविधि की चित्रण-पद्धति मे प्रधानता साहित्यिकता की है; अर्थात् भारतेदु-युग के साहित्यिक निबंधो मे उस युग के समाज की छाप लगाई गई है साहित्यिक ढंग से और इस साहित्यिक ढग मे प्रधानता है हास्य, व्यग और विनोद की। तात्पर्य यह कि उस युग के साहित्यिक निबंधों में हास्य, व्यग्य और विनोद द्वारा ही प्रायः समाज की कमजोरियों तथा शासक की मनमानी का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। साहित्यिक निबंधों मे हास्य, व्यग्य और विनोद की पद्धति पर समाज के चित्रण का प्राधान्य हम श्रीभारतेदु और श्रीप्रतापनारायण मिश्र के साहित्यिक निबधों में पाते है। हिंदी-साहित्य के तीन व्यक्तियो को हम शिष्ट और प्रभावात्मक हास्य, व्यग्य और विनोद का सम्राट् स्वीकार करते है, जिनका कार्य इस क्षेत्र मे बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि उनका क्षेत्र यह नहीं था। उनके नाम है—भारतेदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र और श्रीरामचद्र शुक्ल। श्रीरामचद्र शुक्ल के शिष्ट और निखरे हुए हास्य, व्यग्य और विनोद के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

साहित्यिक निबधों की व्याप्ति के विषय मे कहना यह है कि इनके अतर्गत निबध की पाँच साहित्यिक पद्धतियों पर प्रस्तुत हुए निबध भी आते है और साहित्यिक विषय पर प्रस्तुत हुए निबंध भी। निबंध की पाँच साहित्यिक पद्धतियों से हम परिचित है, अर्थात् विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यजक, वर्णनात्मक और कथात्मक पद्धतियाँ। साहित्यिक विषय से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका संबंध साहित्य के इतिहास, उसके सुधार, प्रचार आदि से है। क्याकि साहित्य के समान ही विज्ञान और इतिहास का सबध भी विद्या से है अतः साहित्यिक निबधों के भीतर हम वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर लिखे गए निबधों को भी ले सकते हैं।

विचारात्मक निबंधों की सीमा बड़ी व्यापक है; वह इस कारण कि निबध चाहे किसी भी पद्धति के अनुसरण पर लिखे जायँ उनमें विचार की—बुद्धि की—अपेक्षा तो होगी ही। फिर भी जिन निबधों मे इसका प्राधान्य हो उन्हें विचारात्मक कोटि मे रख दिया गया है। साहित्य, विज्ञान और इतिहास आदि विषयों पर लिखे गए निबंधों वा लेखों में भी विचारात्मकता का प्राधान्य होता है। किंतु भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की विवेचना करते समय इन पर अलग ही विचार करना उचित प्रतीत होता है, इसका कारण यह है कि इस प्रकार के निबंधों की पद्धति साहित्यिक हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। परंतु जिन निबंधों की पद्धति साहित्यिक होगी, उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनका विषय साहित्यिक हो ही। चाहे किसी भी विषय को लेकर

साहित्यिक पद्धति पर निबंध प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार निबंधों पर विचार करते समय हमारी दृष्टि पद्धति पर विशेष है।

वैसे तो भारतेंदु-युग के प्रायः सभी निबंधकारों ने विचारात्मक निबंध लिखे है—और यह बात प्रायः सभी प्रकार के निबंधों के विषय में कही जा सकती है—परंतु इस क्षेत्र में श्रीबालकृष्ण भट्ट का कार्य प्रभूत और महत्त्वपूर्ण दोनों है। उन्होंने समाज, जीवन, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों से छोटे तथा बड़े विषयों को लेकर विचारात्मक निबंध प्रस्तुत किए है, जिनमे गांभीर्य, विवेचन, स्पष्टता आदि विचारात्मक निबंधसुलभ सभी विशेषताएँ दिखाई पडती हैं। श्रीबालकृष्ण भट्ट बहुपठ और पंडित व्यक्ति थे, अतः उनके निबंधों मे गांभीर्य का प्राधान्य है। उनको भारतेंदु-युग के विचार प्रधान वा गंभीर निबंधकारों का प्रतिनिधि स्वीकार किया जा सकता है।

भारतेंदु-युग के विचारात्मक निबंधों की प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए उस युग मे मनोविकारों वा मन और हृदय की वृत्तियों पर लिखे गए निबंधों की प्रवृत्तियों की चर्चा भी आवश्यक है। इसका निर्देश कर दिया जाय कि इस प्रकार के विचारात्मक निबंध प्रस्तुत करनेवालो मे भी श्रीबालकृष्ण भट्ट अग्रणी हैं। हिंदी-साहित्य मे आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा मनोविकारों पर प्रस्तुत हुए साहित्यिक निबंधों की परंपरा बडी प्राचीन है। वह भारतेंदु-युग से ही चलती है, जब से हिंदी मे निबंध का निर्माण आरंभ हुआ। हाँ, इस विषय पर निबंध लिखनेवालों की विवेचना-पद्धति में भिन्नता अवश्य है। परंतु यह तो सत्य है कि मनोविकारों वा हृदय और मन की प्रवृत्तियों पर निबंध लिखने की चाल हिंदी मे बहुत दिनो से चली आ रही है। भारतेंदु-युग में इस विषय पर लिखे गए निबंधों के लिए कहना यह है कि ये आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत हुए मनोविकार संबंधी निबंधों की भूमिका मात्र हैं, अर्थात् उनके विकास के ये आरंभिक रूप ही है। इनमें साहित्यिकता, विवेचनात्मकता और प्रौढ़ता है अवश्य परंतु उस कोटि की नहीं जिस कोटि की आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों मे। यह हो भी नहीं सकता था, क्योंकि भारतेंदु-युग में निबंध के निर्माण का आरंभ ही हुआ था। उस युग के इस प्रकार के निबंधों में मनोविकारों के ऊपरी रूप की—व्यावहारिक रूप की—ही मीमांसा मिलती है। मनोविकारों की तह तक पैठ कर उनकी विवेचना नहीं मिलती। जैसा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया है। इस प्रकार के निबंधो के विषय मे यह भी स्मरण रखना है कि इनमें से कुछ ऐसे है जिनमें सामाजिकता और शिक्षात्मकता का प्राधान्य है। कुछ तो इसी उद्देश्य से लिखे ही गए हैं। इस उद्देश्य से लिखे गए निबंधों में मन की

किसी प्रवृत्ति की विवेचना कर उससे लाभ-हानि, शिक्षा आदि का वर्णन विशेष रूप से कर दिया गया है।

भारतेंदु-युग में श्रीबालकृष्ण भट्ट के अतिरिक्त भी कुछ निबंधकारो ने मनोविकारो पर निबंध प्रस्तुत किए है। जैसे, श्रीबिहारी चौबे और लाला श्रीनिवासदास। श्रीबिहारी चौबे का 'प्राण-प्रीति'* पर लिखा हुआ निबंध मिलता है, जिसमे जीवन की वा जीने की इच्छा का विचार किया गया है। निबंध विचारात्मक है। इसमे उदाहरणस्वरूप यत्र-तत्र चीन, फ्रास और इगलैंड के विशिष्ट पुरुषो का उल्लेख भी है। निबंध की शैली और भाषा मे प्राचीनता—भारतेंदु-युग वाली—अवश्य है। इसमे पाठको वा मित्रों को सबोधित भी किया गया है। स्वरचित एकाध दोहे भी विवेच्य विषय को लेकर रखे गए है। भाषा मे भी भारतेंदु-युगीन प्राचीनता है। वह एकाध स्थलो पर सदोष भी है।

'सदाचरण'† पर लिखा हुआ लाला श्रीनिवासदास का निबंध भी विचारात्मक है। इसका लक्ष्य शिक्षात्मकता है। देशी तथा विदेशी कुछ दृष्टात भी इसमे है। इसमे श्रीनिवासदास के अँगरेजी ज्ञान का अच्छा प्रभाव है—भाषा मे भी और उदाहरण आदि के देने मे भी।

भारतेंदु-युग मे भावात्मक निबंधो की गतिविधि सुष्ठु नहीं लक्षित होती। भावात्मक निबंधो की विशेषता होनी चाहिए उनमे भावो की तीव्रता, जिसके कारण उनमे प्रभावात्मकता का प्राचुर्य निहित होता है। परंतु हिंदी के भावात्मक निबंधो मे यह तत्त्व मिलता नहीं। उनमे काव्यात्मकता का प्राधान्य मिलता है, जो वर्णनात्मक निबंधो का प्रमुख तत्त्व है। हिंदी के कुछ भावात्मक निबंधो मे भावात्मकता तथा काव्यात्मकता दोनो है, यह उनका सुंदर रूप है। भारतेंदु-युग के भावात्मक निबंधों मे इमे काव्यात्मकता ही अत्यधिक मिलती है और भावात्मकता अत्यल्प। भारतेंदु-युग के दो बड़े प्रसिद्ध भावात्मक निबंध है। एक श्रीभारतेंदु का 'सूर्योदय'⊙ और दूसरा श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'चद्रोदय'‖। इनमें सूर्योदय तथा चद्रोदय का काव्यात्मक पद्धति पर वर्णन है, जिसमे उपमा तथा उत्प्रेक्षा शैली का प्राचुर्य है। इन निबंधों द्वारा किसी प्रकार के भाव की तीव्रता का अनुभव नही होता। हाँ, आलकारिक काव्यात्मकता का आनद इनसे अवश्य मिलता है।

---

* हरिश्चद्र चद्रिका, खड १, सख्या ११, सन् १८७४ ई०।

† भारतेंदु पुस्तक १, अक ५, सन् १८८३ ई०।

⊙ श्रीरामचंद्र शुक्लसंपादित भारतेंदु-सुधा।

‖ श्रीबालकृष्ण भट्ट कृत साहित्य-सुमन।

भारतेंदु-युग में आत्मव्यंजक निबंध लिखनेवाले प्रधानतः तीन व्यक्ति हैं — भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र और श्रीबालकृष्ण भट्ट। परंतु इस क्षेत्र में श्रीप्रतापनारायण मिश्र का महत्त्व अत्यधिक है। यदि सच पूछा जाय तो श्रीप्रतापनारायण मिश्र के ही आत्मव्यंजक निबंध अपने रूप के सच्चे प्रतिनिधि हैं। आत्मव्यंजक निबंधों की प्रधानतः दो विशेषताएँ स्पष्टतः लक्षित होती हैं, एक तो इनके विषय की तुच्छता (ट्रिभियलिटी ऑव् सब्जेक्ट) और दूसरी इनके द्वारा विषय के ज्ञान की अपेक्षा निबंधकार के व्यक्तित्व की अधिक जानकारी। अभिप्राय यह कि आत्मव्यंजक निबंध में ही निबंधकार को अपने को खोलने का अच्छा मौका रहता है, जिसके लिए वह विषयांतर भी करता है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों में उपर्युक्त सभी विशिष्टताएँ मिलती है। भारतेंदु युग के आत्मव्यंजक निबंधों में उपर्युक्त तत्त्व तो मिलते ही हैं, उनको देखते समय कुछ और बातो पर भी दृष्टि जाती है। आत्मव्यंजक निबंध प्रायः हलके साहित्य (लाइट लिटरेचर) की कोटि में आते है। भारतेंदु-युग के इस प्रकार के निबंध भी इसी कोटि में आएँगे। 'हलके साहित्य' से हमारा दो तात्पर्य है, एक तो विषय को प्रतिपादित करने की सामान्य, सरल तथा मनोरंजक शैली से और दूसरा विषय को गूढ न बनाने से। भारतेंदु युग के इस कोटि के निबंधों में विषय बोझिल होता-सा नहीं प्रतीत होता। यदि कहीं गांभीर्य आ भी जाता है तो निबंधकार अपनी मनोरंजक शैली द्वारा तुरत गांभीर्य के पश्चात् हलकापन ला देते है। निबंधकारों की जिंदःदिली की पूरी झलक उस युग के इस प्रकार के निबंधों से मिलती है। भारतेंदु युग के आत्मव्यंजक निबंधों में हास्य, व्यंग्य, विनोद तथा समय की छाप की सस्थिति भी अच्छी है।

इस युग के आत्मव्यंजक निबंधों को देखने से विदित होगा कि इनको प्रस्तुत करने मे निबंधकारों को जो प्रेरणा मिली है वह पूरी कलात्मक है, अर्थात् इस युग के निबंधकारों ने इस प्रकार के निबंधों को लिखते समय कला वा चमत्कार की ओर दृष्टि अवश्य रखी है। इसी कारण इस युग के इस कोटि के कुछ निबंध ऐसे है जिनमें केवल मुहावरों का ही चमत्कार प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार ये जिन विषयों पर लिखे गए है उनके प्रतिपादन मे भी कलात्मकता और कारीगरी की झलक प्रायः मिलती है। हम कहना यह चाहते हैं कि इस प्रकार के निबंध निबंधकारों की मनमौज की अभिव्यक्ति हैं। इनका उद्देश्य कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा कि 'कला के लिए कला' का। इनमें जो समय की छाप है वह प्रसंगात् ही आ गई है, इसको लाने के लिए निबंध नहीं रचे गये हैं।

भारतेंदु-युग मे वर्णनात्मक निबंधो की रचना भी अच्छी हुई। इस युग में वर्णनात्मक निबंधों का विषय प्रधानतः प्रकृति और गौणतः यात्रा तथा पर्यटन रहा। वैसे तो वर्णनात्मक निबंधो की रचना उस युग के प्रायः सभी निबंधकारो द्वारा हुई परंतु भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र और श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय ने इस क्षेत्र मे विशेष कार्य किए। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के भी कुछ वर्णनात्मक निबंध मिलते है। श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय की प्रवृत्ति वर्णन की ओर अत्यधिक लक्षित होती है। ये तो वर्णनात्मक ढग के अतिरिक्त भी यदि कोई निबंध प्रस्तुत करते थे और उसमें वर्णनात्मक स्थलो का सनिवेश हो सकता था तो बिना वर्णन किए आगे नहीं बढते थे। ये वर्णनात्मक शैली का उपयोग भी अत्यधिक करते थे, अर्थात् उसमें काव्यात्मकता का प्राधान्य होता था। वर्णन काव्य का विषय है भी। श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय की वर्णन की ओर अधिक प्रवृत्ति के कारण हम उन्हें भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबधकारो का प्रतिनिधि कह सकते है।

श्रीविनायक शास्त्री बेताल के भी कुछ वर्णनात्मक निबध मिलते है। जैसे, 'श्रीचतुर्भुज यात्रा'। इन्होने विचारात्मक निबध भी प्रस्तुत किए हैं। जैसे, 'सज्जन प्रशंसा और दुर्जन गुण वर्णन'। उस युग के ये अच्छे निबंधकार थे। समय को देखते हुए इनकी भाषा अपेक्षाकृत शिष्ट होती थी। इनके वर्णनात्मक निबंधों के विषय मे कहना यह है कि उनमे काव्यात्मकता की कमी है।

भारतेंदु-युग के निबधकारों की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है उनके द्वारा कथात्मक निबधों की रचना। हिंदी-साहित्य के निबध के क्षेत्र मे शैली की दृष्टि से भारतेंदु-युग की सब से बडी देन कथात्मक निबध ही है। इसे हम इसलिए कह रहे है कि उस युग के बाद इस प्रकार के निबधो की रचना क्रमशः कम होती गई और आज तो ऐसे निबध दिखाई ही नहीं पडते। इसका कारण सभवतः कथा-साहित्य का वर्तमान युग मे प्रचुर प्रचार और प्रसार है।

इस युग के कथात्मक निबंधों की यह पद्धति रही है कि इसके द्वारा निबधकार किसी लक्ष्य वा सिद्धात का प्रतिपादन करके शिक्षा देना चाहते थे। इसके लिए वे लक्ष्य वा सिद्धात को निबध के आरंभ मे ही व्यक्त कर देते थे। ऐसा करने के पश्चात् वे निद्रा से अभिभूत हो उसमे (निद्रा में) स्वप्न को बुलाते वा उसका वर्णन करते थे, जिसमे लक्ष्य वा सिद्धात को प्रतिपादित वा स्पष्ट करने के लिए उदाहरण रूप मे किसी कथा का वर्णन होता था। निबध का अत लक्ष्य वा सिद्धात का पुनर्कथन से होता था, जिसे वे आरभ में कह चुके रहते थे। इस प्रकार के निबधों का अत तनिक पुराने ढग से होता था। अत में

निबंधकार पाठकों को सबोधित करके उन्हें दुर्गुणो से बचने के लिए आगाह करते थे। कुछ निबंधो का अंत आशीर्वादात्मक पद्धति पर भी हुआ है। कथात्मक निबंधों की एक और विशेषता लक्षित होती है। वह विशेषता है उनमें वर्णन के स्थलों की स्थिति की। भारतेंदु-युग के कुछ कथात्मक निबंधों में समय की छाप भी हास्य, व्यंग्य और विनोद की पद्धति से मिलती है। ऐसे कथात्मक निबधों में मनोरंजकता का सनिवेश अच्छा है।

भारतेंदु-युग के प्रमुख कथात्मक निबंधकार और निबंध ये हैं—भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', राजा शिवप्रसाद का 'राजा भोज का स्वप्ना,' श्रीतोताराम का 'स्वप्न,' श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'एक अनोखा स्वप्न'* और श्रीकेशवप्रसाद सिंह का 'आपत्तियों का पर्वत'†। ये सभी निबध किसी न किसी लक्ष्य को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से ही लिखे गए है।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न,' 'स्वप्न' तथा 'राजा भोज का स्वप्ना' के लेखकों के विषय मे हिंदी-साहित्य मे कुछ भ्रम है। अतः इसके निवारण का भी कुछ प्रयत्न होना चाहिए। 'राजा भोज का स्वप्ना' के लेखक राजा शिवप्रसाद माने जाते हैं। परंतु बात ऐसी नहीं है। यह उनकी मौलिक रचना नहीं है, उनके द्वारा अनूदित है। इसकी मौलिक लेखिका है मिस सी० एम्० टकर। हमारी बात सन् १९०५ (तृतीय सस्करण) में प्रकाशित 'राजा भोज का स्वप्ना' नाम्नी पुस्तिका के मुखपृष्ठ को देखने से स्पष्ट हो जायगी, जो इस प्रकार है —

"राजा भोज का स्वप्ना"
राजाज़ ड्रीम
बाइ
मिस सी० एम्० टकर
ट्रांसलेटेड
बाइ
राजा शिवप्रसाद,
सी० एस० आइ०
फार
एच० सी० टकर, एस्क्वायर; बी० सी० एस०

यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि राजा शिवप्रसाद ने इसका

---

* हिंदी-प्रदीप, जिल्द २०, संख्या ५-६-७, सन् १८९७ ई०।

† श्रीश्यामसुदरदाससंपादित हिंदी-निबंधमाला, पहला भाग।

अनुवाद अँगरेजी से किया होगा। परंतु इसकी मूल लेखिका को इसको लिखने की प्रेरणा किसी संस्कृत-रचना द्वारा अवश्य मिली होगी. इसमे भी कोई संदेह नहीं जान पड़ता। कारण यह है कि निबंध मे भारतीयता की छाप आद्योपांत है।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के लेखक के विषय मे भी विचित्र धारणा का प्रचार है। कुछ लोग इसे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की रचना बताते हैं और कुछ लोग श्रीतोताराम की। कभी-कभी तो एक ही लेखक इसे लिखा हुआ बताते है श्रीतोताराम का और उद्धृत करते हैं भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के नाम से। जहाँ तक हिंदी के संग्रह-ग्रंथो की बात है वहाँ तक यह निबंध भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के नाम से ही उद्धृत हुआ मिलता है। और इस बात का प्रचार भी है कि यह रचना उन्हीं की है। इस निबंध के विषय मे एक और बात भी जान रखनी चाहिए वह यह कि अपने मूल स्थान के अतिरिक्त यह सर्वत्र अधूरे रूप मे ही मिलता है। बात यह हुई कि सबसे पहले यह संग्रह ग्रंथ मे लाया गया लाला भगवानदीन और श्रीरामदास गौड द्वारा। उस संग्रह-ग्रंथ का नाम है 'हिंदी-भाषा-सार', जो संवत् १९७३ मे प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह मे यह निबंध जिस अधूरे रूप में संगृहीत है उसी अधूरे रूप में इसका प्रचार अन्य संग्रहो द्वारा भी हुआ। इस प्रकार 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' लोगों के संमुख पूरा न आ सका। अध्यापक पुंगवों के व्याख्यानो का अंश 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में ही पड़ा हुआ है।

'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की ही रचना है, इसमे किसी को संदेह न होना चाहिए। यह रचना उन्हीं के नाम से प्रचलित है जो निराधार नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त भी कुछ और प्रमाण है, जिनके द्वारा यह निबंध उन्हीं द्वारा लिखा गया सिद्ध होता है। यह 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन', भाग १, संख्या ५ (फरवरी, सन् १८७४ ई०) में प्रकाशित हुआ था। उपर्युक्त पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ उनके लेखकों के नाम है, परंतु 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के साथ किसी का नाम नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह संपादक की रचना है और संपादक थे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र।

निबंध मे कुछ ऐसे स्थल आये है जिनका संबंध स्पष्टतः काशी से है। काशी मे कार्त्तिक मास में गंगा-स्नान, तथा अन्य धार्मिक कृत्यों का बड़ा माहात्म्य है। उसीको दृष्टि में रखकर निम्नलिखित अंश लिखा हुआ प्रतीत होता है—

'परंतु फिर भी इनकी (पंडित पाखंडप्रिय की) बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग स्थिर रह जाने देंगे तो हरि कृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

निबंध में काशी का भी उल्लेख है—

•••हमने कल सध्या को यही पुनीत संवाद एक अँगरेजी पढ़े बंगाली महाशय से कलकत्ते और काशी के बीच मे सुना था।

निबंध में कुछ ऐसे शब्दो का भी प्रयोग है जिनका प्रचार काशी की व्यावहारिक भाषा मे विशेष है। जैसे, कमती, लल्लोपत्तो आदि।

इस विवेचना द्वारा निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भारतेदु श्रीहरिश्चंद्र की ही रचना है।

फिर, इस निबंध के साथ श्रीतोताराम के नाम जोड़ने का भ्रम कैसे हुआ। वस्तुतः यह भ्रम ही भ्रम है। बात यह है कि 'हरिश्चद्र मैगज़ीन', भाग १, संख्या ७ (अप्रिल, सन् १८७४ ई०) मे 'स्वप्न' शीर्षक एक कथात्मक निबंध प्रकाशित हुआ है, जो 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' के ही ढग का है। यद्यपि इसका लक्ष्य दूसरा है। उपर्युक्त पत्रिका मे एक ही अक मे यह पूरा प्रकाशित नहीं हो सका, और इसके पश्चात् 'हरिश्चद्र मैगजीन' 'हरिश्चंद्र चद्रिका' हो गई। 'हरिश्चद्र चद्रिका' मे भी यह निबध फिर प्रकाशित हुआ नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रकार यह अधूरा ही रह गया, ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि 'हरिश्चद्र मैगजीन' में निबध के अत मे लिखा है—'शेष आगे', 'तटस्थ', 'टु बी कटिन्यूड'। निबंध के अत मे 'तटस्थ' क्यों लिखा गया ? 'तटस्थ' का अर्थ यह हो सकता है कि इसका संबध सपादक से नहीं है और संपादक थे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र। 'तटस्थ' लिखने का एक अर्थ यह भी हो सकता है कि निबध मे कही गई बातों का उत्तरदायी संपादक नहीं है, क्योकि इसमे अँगरेजों पर कड़े व्यंग्य कसे गए है। इस प्रकार सपादक ने अपने बचाव के लिए सभवतः ऐसा लिखा हो, जिससे उस पर सरकार की कुदृष्टि न पड़ सके। तब, 'स्वप्न' शीर्षक इस निबंध का लेखक कौन हो सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके लेखक श्रीतोताराम है। इसे स्वीकार कर लेने से ऐसी स्थिति तो उत्पन्न ही हो जाती है कि उन्होने एक कथात्मक निबध लिखा था; परंतु भ्रमवश उनका नाम उनकी रचना के साथ न जोड़ा जाकर दूसरे की रचना के साथ जोड दिया गया। 'स्वप्न' नामक निबध को श्रीतोताराम का रचा हुआ मानने का सब से ठोस आधार यह है कि इसके आधे से अधिक अंश मे हिंदी, फारसी, अँगरेजी, संस्कृत आदि भाषाओं की उच्चता और नीचता का अँगरेजो द्वारा ही बखान कराया गया है। और, यह सभी पर विदित है कि श्रीतोताराम हिंदी के प्रचार के लिए जी-जान से प्रयत्नशील थे। अतः उनके निबंध में भी उसकी चर्चा प्रधानतः की गई।

भारतेंदु-युग मे साहित्यिक विषयों को लेकर निबंध-रचना की प्रवृत्ति उस युग के प्रायः सभी प्रमुख निबंधकारों मे दिखाई पडती है। इसका कारण यह है कि वह युग हिंदी-साहित्य की सत्ता स्थापित करने का युग था और इसके लिए यह आवश्यक था कि उसके इतिहास, सुधार, प्रचार, उसके शास्त्रीय पक्ष का विवेचन आदि किया जाय। साहित्यिक निबंध से हमारा अभिप्राय उपर्युक्त विषयों को लेकर लिखे गए निबधो से ही है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। उस युग मे इस प्रकार के निबंध प्रस्तुत करने मे भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र, श्रीप्रतापनारायण मिश्र, श्रीबालकृष्ण भट्ट और श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का विशेष हाथ था, ये ही उस युग के प्रमुख निबधकार थे भी।

भारतेंदु-युग मे ऐतिहासिक विषयो पर निबध प्रस्तुत करने की भी अच्छी प्रवृत्ति थी और इस क्षेत्र मे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र का कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक विषयों पर निबध रचे है, जिनमे यत्र-तत्र उनकी गवेषणात्मक प्रवृत्ति के दर्शन भी मिलते है। उनके कुछ ऐतिहासिक निबंध ऐसे भी है जिनमे भारतीय प्राचीन संस्कृति का भी विचार है। इस प्रकार विदित होता है कि उस युग मे ऐतिहासिक निबधों की गतिविधि भी अच्छी रही।

भारतेंदु युग मे वैज्ञानिक विषय पर लिखे गए निबधों की प्रवृत्ति भी सुष्ठु थी और इस प्रकार के निबधों की रचना भी समय को दृष्टि मे रखकर विचार करने पर कुछ कम नहीं जान पडती। विज्ञान से सबद्ध सभी विषयों—रसायन, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष आदि—पर लिखे गए लेख उस युग मे मिलते हैं। उस युग में वैज्ञानिक लेख लिखनेवाले प्रधानतः तीन व्यक्ति दिखाई पडते है—श्रीबिहारी चौबे, श्रीशीतलाप्रसाद तिवारी और श्रीबापूदेव शास्त्री। श्रीबिहारी चौबे के इस विषय के निबंध 'हरिश्चद्र मैगजीन' और 'हरिश्चद्र चद्रिका' मे प्रकाशित मिलते है, जिनमें कुछ के नाम ये है—'उष्मा वा गर्मी',* 'पाला–हिम–तुषार',* 'आलोक वा प्रकाश'* और 'बिजुड़ी वा तृणमणिशक्ति और चुंबक के विषय में'‡। ये सभी लेख वैज्ञानिक विषयों पर लिखे गए हैं और स्मरण रखने की बात यह है कि वैज्ञानिक विषय सदैव विवेचनासापेक्ष्य होते हैं। ऐसी अवस्था मे बिना विवेचना के इस प्रकार के निबंध स्पष्ट और बोधगम्य नहीं होते। वैज्ञानिक सभी विषयो पर लिखे गए निबंधों के विषय में ऐसा ही

---

* हरिश्चंद्र मैगज़ीन, भाग १, सख्या ७, मई, १८७४ ई०।

‡ हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड १, सख्या ६, जून, १८७४ ई०; और
वही, खंड २, संख्या ३, दिसंबर, १८७४ ई०।

समझना चाहिए। श्रीबिहारी चौबे के उपर्युक्त सभी निबंध विवेचनापूर्ण तथा स्पष्ट है, उनको समझने में कोई असुविधा नहीं उपस्थित होती।

श्रीशीतलाप्रसाद तिवारी के वैज्ञानिक लेख भी 'हरिश्चद्र चद्रिका' मे मिलते है। 'परमाणुओ का वर्णन'* शीर्षक लेख मे उन्होने परमाणुओ के रूप, उनकी पारस्परिक आकर्षण शक्ति, उष्णता के कारण उनका पृथक् होना, सभी इंद्रियगोचर पदार्थों की सृष्टि मे उनका उपयोग, उनकी सूक्ष्मता आदि की विवेचना की है। लेख मे विचारात्मकता तथा स्पष्टता है, जिसके कारण विषय को समझने मे कहीं भी उलझन नहीं पडती।

श्रीबापूदेव शास्त्री के निबध प्रायः ज्योतिष विषय पर लिखे गए है। 'सूर्य का बिम्ब उदय और अस्त के समय मे बडा और मध्य मे छोटा क्यों दिखता है', 'सूर्य का बिम्ब उदय और अस्त काल मे नीचे की ओर चपटा दिखाता है, इसका कारण', 'भूमि के भ्रमण पर विचार'† श्रीबापूदेव शास्त्री के वैज्ञानिक लेख ऐसे ही विषय पर प्रस्तुत है। ' यह पृथ्वी (जिसके पृष्ठ पर हम लोग बसते है) किस आकार का है और इसका परिमाण कितना है और आकाश मे जो ये तेजःपुज घूमते हुए दिखाई देते हैं ये कहाँ से उदित होते है। इस प्रकार इनका विषय पृथ्वी और आकाश है। ये विवेचना द्वारा विषय को स्पष्ट करने मे पूर्ण सफल हुए है। इनकी भाषा सस्कृतमयी हिंदी है।

भारतेंदु युग निबंध-निर्माण की प्राथमिक अवस्था मे ही था, फिर भी साहित्यिक कोई विषय और शैली ऐसी न थी जिस पर उस युग में निबंध न प्रस्तुत हुए हों। जिन शैलियो पर निबध प्रस्तुत हुए उनमे अच्छी प्रौढ़ता, उप-युक्तता तथा स्पष्टता के दर्शन मिलते हैं। कुछ ढग के निबध तो उस युग मे ऐसे लिखे गए जिनका महत्त्व बहुत अधिक आँका जा सकता है, इसका कारण यह है कि बाद के युगों में वैसे निबंध बहुत ही कम प्रस्तुत किए गए वा एक प्रकार से किए ही नहीं गए। यहाँ हमारा तात्पर्य आत्मव्यंजक तथा कथात्मक निबंधों से है। भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की मनोरंजकता वा जिंदःदिली बाद के युगों के निबधो में फिर नहीं दिखाई पडी। इस प्रकार भारतेंदु-युग के साहि-त्यिक निबधो की जो गतिविधि वा प्रवृत्ति थी उसका अपना विशेष स्थान है।

---

* वही, खड १, सख्या १०, जुलाई, १८७४ ई०।

† इनके ये सभी लेख कविवचनसुधा, जिल्द १, न० २ (आश्विन, स० १९२७ वि०) ३, ५, ७ मे प्रकाशित हैं।

उस युग मे ऐतिहासिक और वैज्ञानिक लेखो को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी अच्छी थी और इस प्रकार के निबंधों का जो ढग था वह भी स्पष्ट, सुबोध और विवेचनापूर्ण था।

भारतेंदु-युग के साहित्यिक निबंधों की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए विशिष्ट शैली और प्रकार के प्रतिनिधि निबंधकारों पर भी यत्र तत्र हमारी दृष्टि रही है। कारण यह है कि ऐसे निबधकारो के निबंधो की विशेषताओं को दृष्टि में रखकर ही प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया जा सकता था। कुछ ऐसे निबधकारों के व्यक्तित्व की चर्चा भी हुई है जिनका महत्त्व विशेष नहीं आँका जा सकता, यद्यपि उनका ऐतिहासिक महत्त्व है अवश्य। वह इस दृष्टि से कि हिंदी-साहित्य मे उनके विषय मे अब तक पूर्ण अभिज्ञता नहीं थी। भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि सामाजिक निबधकारों से हम परिचित है। कहना न होगा कि वे ही निबंधकार उस युग के साहित्यिक निबंधकारों के भी प्रतिनिधि है। एक और निबंधकार इस श्रेणी म आते है। उनका नाम है श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय। ये वर्णनात्मक निबधकारों के प्रतिनिधि है, इसकी चर्चा हम कर चुके है। ये प्रतिनिधि निबंध-कार एक-एक शैली के निबध के विशिष्ट रचयिता तो है ही, इनका महत्त्व इस कारण तो है ही, इनका महत्त्व इस कारण भी है कि ये एक-एक शैली के निबंधों का प्रतिनिधित्व करते हुए भी सभी शैली के निबध प्रस्तुत करने मे समर्थ है।

भारतेंदु-युग में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ही ऐसे निबधकार दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने निबध की सभी शैलियों में रचनाएँ प्रस्तुत कीं और सफलतापूर्वक प्रस्तुत कीं। जिन भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने हिंदी-साहित्य के सभी अगों के निर्माण और विकास का कार्य किया उन भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के लिए यह कोई विशेष कठिन कार्य नही। साहित्य के क्षेत्र मे ही नहीं समाज के क्षेत्र में भी उनकी सेवा अमूल्य है; इसे भी सभी जानते है। उनके सामाजिक निबधों द्वारा यह बात स्पष्ट है, इसकी चर्चा हम कर चुके है। एक साथ ही समाज और साहित्य के क्षेत्र में समान रूप से कार्य करना, और महत्त्वपूर्ण कार्य करना किसी युग-पुरुष द्वारा ही सभव होता है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र वस्तुतः युग-पुरुष ही थे। तो, भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने सभी प्रकार के साहित्यिक निबध लिखे। भारतेंदु-युग का समाज और साहित्य साथ-साथ चलता था, कोई किसी से विमुख नहीं हुआ, किसी ने किसी की अवहेलना नहीं की। उस युग के निबंधकारों द्वारा सामाजिक निबंधों के प्रणयन का रहस्य यही है, इस पर हम विचार कर चुके है। उस युग के साहित्यिक निबंधों में भी निबधकारों की दृष्टि प्रसंगात् समाज पर गई है।

अभिप्राय यह कि सामाजिक निबंधों मे साहित्य की गौणता है और साहित्यिक निबंधों में समाज की गौणता, परंतु निबंधकार किसी भी श्रेणी के निबंध में समाज से विमुख नहीं दिखाई पड़ते। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के साहित्यिक निबंधो मे समाज के रूप की योजना की प्रवृत्ति अत्यधिक लक्षित होती है। उस युग के अन्य निबंधकारो मे यह प्रवृत्ति कुछ कम है। स्मरण रखने की बात यह है कि साहित्यिक निबंधों मे समाज का चित्रण प्रसगात् ही हुआ है। विषय के लपेट मे कहीं स्पष्ट-स्पष्ट उसकी (समाज की) बाते आ गई है और कहीं हास्य, व्यग्य और विनोद की शैली मे। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के साहित्यिक निबंधों में समाज का चित्रण विशेषतः द्वितीय रूप मे ही किया हुआ दिखाई पड़ता है। प्रथम रूप में भी इसकी योजना हुई है, पर कम। साहित्यिक निबंधो मे और अन्य प्रकार की रचनाओं मे भी समाज को बातो को लाने की दूसरी पद्धति बड़ी उपयुक्त और रोचक होती भी है। उपयुक्त इस दृष्टि से कि इस पद्धति द्वारा योग्य रचनाकार अधिक वस्तु थोड़े मे कह सकता है और साहित्यिक निबंधों में जब समाज की बात प्रसगात् ही लानी होती है, अर्थात् थोड़े म ही कहनी होती है, तब इस पद्धति की आवश्यकता का अनुभव सहज ही होता है। हास्य, व्यग्य और विनोद की रोचकता और मार्मिकता के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के साहित्यिक निबंधों की प्रवृत्ति के विषय मे एक और बात कहनी है। अपने देश, जाति और समाज के गौरव, उसकी रक्षा, उसमे सुधार आदि की भावना उनके साहित्यिक निबंधों मे भी प्रसंगात् परोक्षतः भी और प्रत्यक्षतः भी मिलती है। उनके सामाजिक निबंधो मे उपर्युक्त भावनाओं की चर्चा हम कर चुके है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के विचारात्मक निबंधों मे 'नाटकों का इतिहास'* नामक निबंध बडा प्रसिद्ध है। विषय की दृष्टि से यह बहुत ही छोटा प्रतीत होता है। नाटक-रचना का आरंभ भारतवर्ष मे ही हुआ, इस निबंध का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय यही है। इसमे अभिनय के विषय में भी विचार किया गया है और बताया गया है कि इसका प्रमाण 'महाभारत' मे मिलता है। नाटक सबधी अन्य बातों की विवेचना भी इसमे है।

'संगीत'† को हम विचारात्मक निबंध न कहकर लेख ही कहेंगे। इसमें संगीत के अनेक सप्रदायों, नाट्य, वाद्य और गीति—उसके विभागों, भारत मे

---

* भारतेंदु-ग्रंथावली, भाग १, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

† हरिश्चद्रचद्रिका, खड २, सख्या ८-१२, सन् १८७४ ई०।

इसकी प्राचीनता और गभीरता, सगीत के भेदोपभेद का पूर्ण वर्णन, राग-रागिणियों के भेद, किस समय कौन-सी राग-रागिणी गाई जानी चाहिए आदि का विस्तृत विवेचन है। इसको देखने से विदित होता है कि भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की पैठ संगीत के क्षेत्र मे भी कितनी गहरी थी। यह तो सत्य है कि यह लेख संस्कृत ग्रथ के आधार पर ही लिखा गया होगा, परंतु अपनी भाषा मे इसके लेखक ने अभीष्ट विषय का वर्णन और विवेचन बड़ी सरलता, सफलता और स्पष्टता के साथ किया है।

भारतेदु श्रीहरिश्चद्र के भावात्मक निबधो में 'सूर्योदय'* बडा प्रसिद्ध है। यह एक लघु निबध है, जो एक ही लबे प्रघट्टक मे लिखा गया है। इसका ढग ठीक वैसा ही है जैसा श्रीबालकृष्ण भट्ट के 'चंद्रोदय' का है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट को सूर्योदय' निबध से ही अपने निबध को लिखने की प्रेरणा मिली है। इन दोनों निबधों में अनेक वस्तुओ को संमुख रखकर यह बताया गया है कि चंद्र वा सूर्य 'यह' है अथवा 'वह' है। जैसे—देखो। सूर्य का उदय हो गया। अहा! इसकी शाभा इस समय ऐसी दिखाई पड़ती है मानो अंधकार को जीतने को दिन ने यह गोला मारा है, अथवा प्रकाश का यह पिंड है वा आकाश का यह कोई बड़ा लाल कमल खिला है, वा लोगो के शुभाशुभ कर्म की खराद का यह चक्र है, अथवा चद्रमा के रथ का पहिया है, घिसने से लाल हो गया है, अथवा काल के निर्लेप होने की सौगद खाने का यह तपाया हुआ लोहे का गोला है···। सपूर्ण निबध की शैली ऐसी ही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार की शैली में भावात्मकता के दर्शन तो नहीं, हाँ, काव्यात्मकता के दर्शन अवश्य होते हैं। ऊपर का उदाहरण इसका प्रमाण है। यहाँ कहा यह जा सकता है कि काव्य भी तो भावप्रेरित ही होता है, ऐसी स्थिति में इस प्रकार के निबधों में काव्यात्मकता का आना आवश्यक है और इन्हें सच्चा भावात्मक निबंध, फिर, क्यों न कहा जाय। बात बहुत ठीक है। काव्यवाली भावात्मकता तो इस ढंग के निबंधों मे मिलती है परतु भावात्मक निबधों मे भाव का जो वेग और प्रवाह मिलना चाहिए वह नहीं दिखाई पडता दिखाई भी पड़ता है तो कम निबंधों मे। श्रीचतुरसेन शास्त्रीकृत 'अंतस्तल' के ऐसे निबधो मे भावो का वेग अच्छा है, इसके निबध असली भावात्मक निबधों की कोटि मे आते है।

---

* श्रीरामचद्र शुक्लसंपादित भारतेदु-सुधा।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के आत्मव्यंजक निबंधों में 'ककर स्तोत्र'* और 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है'† विशेष उल्लेख्य है। इस प्रकार के निबध के लिए विषय की तुच्छता का जो निर्धारण किया गया है वह उपर्युक्त निबंधो में है। आत्मव्यजक निबंधों के लिए विषय की तुच्छता का प्रतिपादन भी सकारण है। इस प्रकार के निबधों मे निबंधकार की दृष्टि विषय पर अत्यल्प रहती है और आत्मोद्घाटन पर अत्यधिक। ऐसी स्थिति मे उसके लिए विषय का महत्त्व कुछ विशेष नहीं रहता। कभी-कभी तो विषय की तुच्छता ही आत्मव्यजना के लिए लबी-चौड़ी भूमि दे देती है। जैसे, 'ककर-स्तोत्र' नामक निबध में ककड को ही सब कुछ बनाया गया है, यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु आदिक का कर्ता भी। वस्तुतः ककड़ में यह शक्ति नहीं है, परंतु निबंधकार उसे इन रूपों में स्वीकार ऐसा सिद्ध करता है। इसका कारण म्युनिसिपैलिटी की अव्यवस्था के प्रति उसकी खीझ की व्यजना है। हम कहना यह चाहते है कि इस प्रकार के निबधों मे विषय की तुच्छता निबंधकार की आत्मव्यजना की साधिका होती है। 'ककर-स्तोत्र' नामक निबंध मे चमत्कार, जिदःदिली, मनोरजकता, हास्य, व्यग्य और विनोद सब कुछ विद्यमान है। 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' मे भी ये सभी विशेषताएँ प्राप्त है। इस निबध की शैली छोटे-छोटे वाक्योंवाली, प्रभावपूर्ण और खीझ से भरी है। इस निबध का प्रतिपाद्य है अपनी विचित्र और उलटी लीला के कारण ईश्वर का विलक्षण कहा जाना। उसको इस विलक्षणता के कारण कुछ लोग उसे भला कहते है और कुछ लोग बुरा। इस निबध के आरभ मे हिंदुओं की सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य प्रकार की त्रुटियों पर भी व्यग्य कसा गया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के वर्णनात्मक निबधों में कुछ ये है—'वसत,'¶ 'ग्रीष्म ऋतु,'× 'वर्षा काल,'†† 'वैद्यनाथ की यात्रा,'⊙ 'सरयूपार की यात्रा,'[१]

---

* हरिश्चंद्र और मोहनचंद्रिका, विद्यार्थी समिलित, खंड ७, सख्या ६ (संवत् १९३७ वि०)

† श्रीरामचद्र शुक्लसपादित भारतेंदु-सुधा।

¶ हरिश्चद्र चद्रिका, खड २, सख्या ३, दिसंबर, सन् १८७४ ई०।

× हरिश्चद्र मैगजीन, भाग १, सख्या ८, मई, सन् १८७४ ई०।

†† हरिश्चद्र चंद्रिका और मोहन चद्रिका, विद्यार्थी संमिलित, खंड ७, संख्या ५ (संवत् १९३७ वि०)

⊙ वही, खंड ७, सख्या ४ (सवत् १९३७ वि०)

१ हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड ६, सख्या ८ (फरवरी १८७९ ई०)

'मेला झमेला'* और 'पाँचवें पैगंबर' †। इन निबंधों को देखने से विदित होता है कि इनका संबंध ऋतु और प्रकृति से भी है, पर्यटन से भी है और मेला आदि से भी है। अभिप्राय यह कि वर्णन के प्रायः सभी विषयों पर उनके निबंध मिलते है। 'पाँचवें पैगंबर' नामक निबंध भी एक प्रकार का वर्णनात्मक निबंध ही है, जिसमें सामाजिकता विशेष है। इन निबंधो में वर्णनात्मकता के साथ साथ काव्यात्मक स्थल भी आए है, जो इस प्रकार के निबंधों का प्रधान गुण है, जिसके कारण हृदय की वृत्ति रमती है। जैसे—

खैर इसी सात पाँच मे रात कट गई। बादल के परदों को फाड़-फाड़ कर उषा देवी ने ताक झाँक आरंभ कर दी। परलोक गत सज्जनो की कीर्ति की भाँति सूर्यनारायण का प्रकाश पिशुन मेघो के वागाडंबर से घिरा हुआ दिखाई पड़ने लगा। प्रकृति का नाम काली से सरस्वती हुआ। ठंढी ठंढी हवा मन की कली को खिलाती हुई बहने लगी। दूर से...काहीं रंग के पर्वतो पर सुनहरापन आ चला। कहीं आधे पर्वत बादलों से घिरे हुए, कहीं एक साथ वाष्प निकलने से उनकी चोटियाँ छिपी हुई और कहीं चारो ओर से उन पर जलधारा पात से बुक्के की होली खेलते हुए बडे ही सुहाने मालूम पड़ते थे। —[वैद्यनाथ की यात्रा]

उपर्युक्त सभी निबंधो में ऐसे ही वर्णनात्मक स्थल है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र का एक ही कथात्मक निबंध—'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न'—मिलता है। इसके संबंध मे पहले भी हमने विचार किया है। इस निबंध का प्रतिपाद्य है अमर होने की अभिलाषा में किसी संस्था वा पाठशाला की स्थापना। यद्यपि इस निबंध का प्रतिपाद्य यही है तथापि इसमे जो कुछ कहा गया है वह सब हास्य; व्यंग्य और विनोद की पद्धति पर। प्रतीत तो ऐसा होता है कि उपर्युक्त लक्ष्य के किसी अभिलाषी की खबर लेने के लिए ही यह निबंध प्रस्तुत किया गया है। मनोरंजकता से सारा निबंध भरा पड़ा है। इतनी मनोरंजकता, इतना हास्य, व्यंग्य और विनोद जितना कि इस निबंध मे है, शायद ही भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के अन्य निबंधो मे मिले। इस निबंध द्वारा उनकी जिंदादिली का पूरा परिचय मिल जाता है। इसमे हास्य, व्यंग्य और विनोद का संभावना दो पद्धतियों से की गई है। जहाँ इनकी संभावना के लक्ष्य ये ही है वहाँ तो संभव तथा असंभव दोनों प्रकार की वस्तुओं की नियोजना द्वारा इनकी उत्पत्ति की गई है। निबंध मे समय की

---

* वही, खंड ६, संख्या ११ (मई, सन् १८७६ ई०)

† हरिश्चंद्र मैगजीन, भाग १, संख्या ३ (दिसंबर, सन् १८७३ ई०)

छाप लगाने के स्थलो पर भी इनका उपयोग किया गया है। निबंध में समय की पूरी छाप है। तत्कालीन समाज की त्रुटियो पर इसमे अच्छा व्यग्य है, विशेषत: पादरी, अँगरेज, अँगरेजो के अनुयायियो, चदाखोरो, आलोचको आदि पर। हास्य, व्यग्य, विनोद के कुछ स्थल देखिए—

अंत को एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूँछ हाथ मे लग गई।

× × ×

शेप स्त्री-शिक्षा का जो विचार था वह आज रात को घर पर पूछ लें तब कहेगे।

× × ×

फिर पडे पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परतु इस विचार मे बड़े काँटे निकले। क्योकि बनाने की देर न होगा कि कीट 'क्रिटिक' काट कर आधी से अधिक निगल जायँगे। यश के स्थान पर शुद्ध अपयश प्राप्त होगा।

× × ×

हम अपने इष्टमित्रों की सहायता को कभी न भूलेगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया, और दस पॉच पीढ़ी तक हमारी सतान के लिए बच रहा।

साहित्यिक विषय पर लिखे गए भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के 'हिंदी भाषा',* 'स्यापा'† आदि निबध है। साहित्यिक विषय से क्या तात्पर्य है, इसकी चर्चा की जा चुकी है। 'हिंदी भाषा' मे उदाहरणो का बाहुल्य है। परतु लेख में ऐसे स्थल भी है जहाँ लेखक ने विषय की स्पष्टता के लिए विचारात्मक ढग से संक्षिप्त विवेचना की है। लेख के आरभ में यह विवेचना कुछ लबी है। उदाहरण वा नमूने हिंदी भाषा तथा अन्य बोलियो के भी है। इस लेख मे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र भाषा के तीन विभाग करते है—घर मे बोलने की भाषा, कविता की भाषा और लिखने की भाषा। उनकी दृष्टि में कविता की भाषा ब्रज भाषा है, खड़ी बोली नहीं, क्योंकि इस खड़ी बोली में रचना करने मे वे सफल नहीं हुए। उनका कहना है कि कविता मे खड़ी बोली का प्रयोग इसलिए अच्छा नहीं होता कि उसकी क्रिया आदि दीर्घ मात्रा मे होती है। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र लिखने की भाषा के लिए उस भाषा का उपयोग करना चाहते हैं जिसमे संस्कृत

* म० कु० श्रीरामदीन सिह द्वारा प्रकाशित, सन् १८९० ई०; खगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

† हरिश्चंद्रचद्रिका, खड १, सख्या ९, जून, सन् १८७४ ई०।

के शब्द थोडे हों अथवा जो शुद्ध हिंदी हो। इस प्रकार यह एक अच्छा-सा विचारात्मक लेख है।

'स्यापा' एक लघु निबंध है, जिसके द्वारा भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की हिंदी की हिमायत का परिचय मिलता है। उर्दू के किसी स्थान से निकाले जाने और उस स्थान पर हिंदी की प्रतिष्ठा होने पर यह निबध प्रस्तुत हुआ है। इसकी शैली बडी मनोरजक तथा हास्य, व्यग्य और विनोदपूर्ण है। 'है है उर्दू हाय हाय' वाली कविता इसी निबध के अत मे उद्धृत करने के लिए लिखी गई है। इसमें उर्दू को ऊटनी के रूप में स्मरण किया गया है। उर्दू के हिमायती राजा शिवप्रसाद पर भी एकाध छींटा मारा गया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने कुछ ऐतिहासिक लेख भी लिखे है, इसका उल्लेख किया जा चुका है। उनके कुछ ऐतिहासिक लेखो के नाम इस प्रकार है—'अकबर और औरगजेब',* 'खत्रियो की उत्पत्ति',† 'रामायण का समय',‡ 'वैष्णवता और भारतवर्ष'॥। अतिम दो लेखो का सबध भारतीय प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृति से विशेष है। इन दोनो लेखो से भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की गवेषणात्मक प्रवृत्ति के भी दर्शन मिलते है। जैसे, 'रामायण का समय' नामक लेख में यत्र और शतघ्नी की मीमासा के लिए 'गीता', 'महाभारत', 'मत्स्यपुराण' आदि ग्रथो से श्लोक उद्धृत किए गए है। अन्य वस्तुओ के विचार के लिए भी यत्र-तत्र गवेषणात्मक शैली का उपयोग किया गया है। इस लेख का प्रतिपाद्य रामायण-काल मे भारतीय रीति, नीति, आचार, व्यवहार, सभ्यता, सस्कृति आदि है। प्रसगात् इसमें आधुनिक विषयों की चर्चा भी आ गई है। जैसे, दयानद द्वारा मूर्तिपूजा तथा अँगरेजो द्वारा भारतीय ग्रथ, सभ्यता आदि पर आक्रमण का विरोध किया गया है। इसमे एकाध स्थल पर व्यग्य भी है।

'वैष्णवता और भारतवर्ष' भी इसी ढंग का लेख है। इसमे भी लेखक की गवेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। इस लेख का विषय है भारत में वैष्णवता का विकास तथा भारतीय समाज मे विष्णु की व्यापकता। विषय की

---

* हरिश्चद्रचद्रिका और मोहनचंद्रिका, सन् १८८० ई०।

† यह लेख हरिश्चद्र मैगजीन के कई अको में प्रकाशित है।

‡ श्रीरामरणविजय सिंह द्वारा प्रकाशित, दूसरी बार १९१६, खगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

॥ श्रीरामरणविजय सिह द्वारा प्रकाशित, तृतीय बार, १९१५; खगविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।

विवेचना अनेक दृष्टियो से की गई है, जिसमे वेद, उपनिषद्, पुराण तथा अन्य ग्रथो की बातों का भी उपयोग किया गया है। इस प्रकार विदित होता है कि विद्या के क्षेत्र मे भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की पहुँच बडी दूर तक थी। इस लेख मे भी उनकी दृष्टि समाज-सुधार पर है। वे गोस्वामियो से रजोगुणी तथा तमोगुणी स्वभाव को छोडने के लिए निवेदन करते है। उनका कथन है कि गुरु मे विद्या हो, जिससे उसमे शील, नम्रता आदि का उदय होगा। गुरुओं द्वारा विलासिता आदि के त्याग का सुझाव भी वे रखते है। मदिरों मे स्त्रियो के सहवास का वे निषेध करते है। उनका मत है कि गोपी, रास, आदि के रूप को समझाया जाय। ऐसे ही अन्य बातें भी वे कहते है, जिनके विषय मे गोस्वामियों को ध्यान देना आवश्यक है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु-युग के आत्मव्यजक निबधकारो के प्रतिनिधि हैं, इसका उल्लेख हो चुका है और यहाँ यह भी समझ रखना चाहिए कि वे इस प्रकार के निबधकारो के सच्चे प्रतिनिधि है। उनके विषय मे बात इससे कुछ आगे भी बढकर कही जा सकती है। वह यह कि वे भारतेंदु-युग के ही नहीं वरन् हिंदी-साहित्य के आत्मव्यजक निबधकारो के प्रतिनिधि है। साहित्य के प्रत्येक युग की अपनी-अपनी विशिष्ट देन होती है। भारतेंदु-युग ने हिंदी-साहित्य को अनेक विशिष्ट देनो से सुशोभित किया, उनमें से आत्मव्यजक निबध भी एक है। इस युग के पश्चात् इस ढग के निबधों के लिखने की चाल ही बद हो गई। अँगरेजी के वैयक्तिक निबंधो की ठीक नकल पर वर्तमान युग में कुछ निबंध लिखे गए अवश्य, परंतु उनमें दूसरे साहित्य से नकल करने की धुन के कारण अपनापन न आ सका। भारतेंदु-युग के आत्मव्यजक निबधो मे पूरा अपनापन है। वर्तमान युग मे आत्मव्यजक निबधो के लिखने की ओर उन लोगो की भी प्रवृत्ति कुछ लक्षित होती है, जो हास्य के क्षेत्र मे काम करते है, परतु उनकी इस प्रकार की रचनाओं मे हसोडपन ही अधिक होता है, शुद्ध चमत्कार और मनोरजकता कम। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यजक निबधो मे जो चुलबुलापन, जो शुद्ध चमत्कार, जो जिंदादिली, जो मनोरजकता मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण उनके विषय म इतनी उच्च धारणा की चर्चा की जाती है। भारतेंदु-युग के आत्मव्यंजक निबध की प्रवृत्तियो का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। वे सारी प्रवृत्तियाँ श्रीप्रतापनारायण मिश्र के निबधों पर लागू की जा सकती है। निबध के प्रकार की दृष्टि से इनके निबधों के विषय का चुनाव तथा उनकी शैली का ग्रहण बड़ा ही औचित्यपूर्ण है। इनके निबधों के विषय प्रायः बड़े सामान्य है, जिनमें आत्मव्यजना के लिए पूरा अवकाश और अवसर रहता है। इनकी शैली भी

बडी सामान्य है, उसमें कोई जटिलता नही है। वह ऐसी है कि जिसके द्वारा श्रीप्रतापनारायण मिश्र की विनोदशीलता तथा उनके अक्खडपन का पूरा चित्र समुख आ उपस्थित होता है।

यद्यपि श्रीप्रतापनारायण मिश्र प्रधानतः आत्मव्यंजक निबंधकार ही है तथापि उन्होंने कुछ निबंध ऐसे भी लिखे है जो साहित्यिक कोटि के विचारात्मक निबंध है। 'काल', 'युवावस्था,' 'शिवमूर्ति'* आदि निबंध इसी कोटि के है। इस प्रकार के निबंधों मे विषय का प्रतिपादन विवेचनात्मक पद्धति पर किया गया है, जिसके द्वारा विषय में पूरी स्पष्टता तथा बोधगम्यता आ गई है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधो की चर्चा की जा चुकी है। उन्होंने साहित्यिक शैली के भी जितने निबंध लिखे है उन में भी प्रसगात् सामाजिकता की छाप है। 'काल' नामक निबंध मे कहा गया है कि देश की दुःखावस्था पर दृष्टि रखनेवालो को काल की परिवर्तनशीलता भी स्मरण रखनी चाहिए। 'युवावस्था' शीर्षक निबंध मे कहा गया है कि युवको को काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मात्सर्य इन छह रिपुओ को बुरे मार्ग पर न लगाकर देश, जाति तथा धर्म के हेतु लगाना चाहिए। इस प्रकार विदित होता है कि साहित्य-पक्ष पर दृष्टि रखते हुए भी इनकी दृष्टि देश और जाति पर थी।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधो को विषय-प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से स्थूलतः दो श्रेणियों मे रख सकते है। एक तो वह श्रेणी है जिस श्रेणी के निबंधो के प्रतिपादन मे चुलबुलापन का आधिक्य है; और दूसरी वह श्रेणी जिसके निबंधों के प्रतिपादन मे चुलबुलापन की कमी तथा गाभीर्य का आधिक्य है। स्मरण रखने की बात यह है कि यह उनके निबंधों का स्थूल विभाजन ही है, क्योंकि दोनों श्रेणियो की विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप मे एक दूसरे मे मिल सकती हैं। पहली श्रेणी मे आनेवाले निबंध है—'आप', 'बात', 'भौं', 'नारी', 'सोना'* आदि। दूसरी श्रेणी मे आनेवाले निबंध ये है—'धोखा', 'वृद्ध', 'खुशामद', 'दाँत', 'बालक', 'परीक्षा'† आदि। प्रथम श्रेणी के ही अंतर्गत उनके वे निबंध भी आएँगे जो अक्षरों पर लिखे गए है, जैसे 'द' और 'ट' पर लिखे गए निबंध। प्रतिपादन का चुलबुलापन और गाभीर्य की दृष्टि से ही इन निबंधों के बीच भेद की सीमा-रेखा खींची जा सकती है, अन्यथा इन दोनो प्रकार के निबंधों मे प्रायः सामान्य विशेषताएँ लक्षित

---

* ये निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत मे प्रकाशित है।

† इन दोनों श्रेणियों के निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्रकृत निबंध-नवनीत मे प्रकाशित हैं।

होती है। 'आप' को प्रथम श्रेणी के निबधों का प्रतिनिधि तथा 'धोखा' को द्वितीय श्रेणी के निबधो का प्रतिनिधि मान कर विचार कर लेने पर इनकी सारी विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँगी।

'आप'-श्रेणी के निबधों की प्रधान विशेषता का उल्लेख हो चुका है। अर्थात् उनमे प्रतिपादन का हलकापन (लाइटनेस ऑव् ट्रीटमेट) वा चुलबुलापन है। कहीं भी ऐसा स्थल नही आता जहाँ पाठक वा श्रोता को कुछ बौद्धिक श्रम का अनुभव करना पड़े। वह निबंध की प्रायः सभी बातो का ग्रहण उसी रूप में करता है जिस रूप मे मनोरजन की वस्तुओ का ग्रहण। स्मरण रखने की बात यह है कि उसमें साहित्यिक रुचि होने की शर्त अवश्य रखी जा सकती है। इस श्रेणी के निबंधो मे भी विचारात्मक स्थल आए है, परंतु वे बुद्धि पर बोझ रखते हुए-से नहीं प्रतीत होते। जैसे, 'आप' शीर्षक निबंध का यह स्थल—अब तो आप समझ गए होगे कि आप कहाँ के है, कौन है, कैसे है, यदि इतने बड़े बात के बतगड़ से भी न समझे हो तो इस छोटे से कथन मे हम क्या समझा सकेंगे कि 'आप' सस्कृत के आप्त शब्द का हिंदी रूपातर हैं, और माननीय अर्थ के सूचनार्थ उन लोगों (अथवा एक ही व्यक्ति) के प्रति प्रयोग मे लाया जाता है जो सामने विद्यमान हो चाहे बाते करते हो, चाहे बात करनेवालो के द्वारा पूछे बताए जा रहे हो, अथवा दो वा अधिक जनो मे जिनकी चर्चा हो रही हो।

ये निबंध आत्मव्यजक है। अतः इनमे आत्मव्यजकता का प्राधान्य है, विचारात्मकता का नहीं। ऐसी स्थिति मे जिन विषयो पर ये लिखे जायँ उनकी वैज्ञानिक छानबीन हो सकेगी अथवा नही, इसमे पूरा सदेह ही है। बात तो यह है कि इनके द्वारा तथ्य-प्रकाश होता नहीं है। 'आप' (सर्वनाम) पर विचार करते हुए एक स्थान पर लिखा गया है—इस प्रकार पानी की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का विचार करके लोग पुरुषो का भी उसी के नाम से आप पुकारने लगे होगे। इस विचार मे कितना तथ्य है, यह नहीं कहा जा सकता। विचार मे वैज्ञानिकता हो वा न हो परतु किसी विषय को लेकर उसके प्रतिपादन का प्रयत्न अवश्य ही श्लाघ्य है। निःसदेह श्रीप्रतापनारायण मिश्र मे प्रतिपादन की बड़ी ही गहरी शक्ति के दर्शन होते है।

'आप'—श्रेणी के निबध आत्मव्यजना-प्रधान हैं। अतः विषयातर द्वारा निबधकार ने ऐसे स्थल भी निकाले है जहाँ उसे अपने को व्यक्त करने का अवसर मिले। इसी कारण निबधकार सर्वनाम 'आप' पर विचार करते हुए सस्कृत भाषा तक जाता है; और कुत्ते, बिल्ली की बोली तक भी पहुँचता है।

'आप'-श्रेणी के निबधों की प्रायः वैसी ही शैली है जैसी वार्तालाप की होती है। 'आप' शीर्षक पूरे निबध मे प्रश्नोत्तर की निहिति इसका प्रमाण है। यह अवश्य है कि निबधकार ही प्रश्नकर्ता तथा उत्तरदाता दोनों है।

इस श्रेणी के कुछ निबध ऐसे है जिनमे आत्मव्यजक निबंध की विशिष्टताओं के साथ ही मुहावरो के चमत्कार-प्रदर्शन का भी प्राधान्य है। ऐसे निबंधों मे निबंधकार मुहावरों विषयक अपनी जानकारी दिखाने की ओर ही विशेष उन्मुख जान पडता है। 'बात' शीर्षक निबध का यह स्थल देखिए—इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगडती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अडती है, बात जमती है, बात उखडती है, हमारे-तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निभर है। यहाँ विरोधी क्रियाओ द्वारा बने 'बात'-सबधी मुहावरो के सग-सग उल्लेख से अच्छा चमत्कार उत्पन्न हुआ है। 'भौ' शीर्षक निबंध मे भी यह प्रवृत्ति लक्षित होती है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र के इस श्रेणी के निबध भी समय की छाप से नहीं बच सके हैं। उनमे भी तत्कालीन देश-काल की चर्चा हुई है। जैसे, 'भौं' शीर्षक निबध मे देश के व्यक्तियों का ध्यान अपनी भाषा, अपने धर्म, धन, बल, व्यापार आदि की ओर आकृष्ट किया गया है।

'द' और 'ट' पर लिखे गए निबधो को भी उनकी समान प्रवृत्तियों के कारण 'आप' श्रेणी के निबधों में ही रखा गया है। इन निबंधो द्वारा 'द' और 'ट' युक्त शब्दों को लेकर विषय-प्रतिपादन का चमत्कार लक्षित होता है। इन निबंधो की प्रधान विशेषता है इनमे तत्कालीन देश-काल की निहिति। ऐसा करते हुए निबधकार की दृष्टि अँगरेजों की मरमत करने पर अच्छी है।

इसका उल्लेख किया जा चुका है कि 'आप' तथा 'धोखा'–श्रेणी के निबध समान ही प्रवृत्ति धारण करते हैं। यदि इनमें कोई भेद है तो यही कि 'धोखा' श्रेणी के निबधो मे विचारात्मकता का कुछ आधिक्य है। ऐसी स्थिति मे 'आप'-श्रेणी के निबंधों की जिन विशेषताओ की विवेचना ऊपर हुई है वे सभी 'धोखा'-श्रेणी के निबधों मे विद्यमान है। इस श्रेणी के किसी भी निबध मे वे देखी जा सकती हैं। समय की छाप, मुहावरों का चमत्कार, आत्मव्यंजकता, प्रतिपादन की शक्ति, वार्तालाप की शैली आदि सभी प्रवृत्तियाँ इस श्रेणी के निबधों मे भी मिलती है। 'धोखा'-श्रेणी के निबंधों मे इन प्रवृत्तियों के साथ ही विचारात्मकता वा गाभीर्य का कुछ आधिक्य है। इस 'कुछ' शब्द पर दृष्टि रखनी आवश्यक है। इस विचारात्मकता वा गाभीर्य की निहिति का कारण है

इनमें निबधकार की दृष्टि का विषय प्रतिपादन की ओर कुछ अधिक होना। ऐसी अवस्था मे इस श्रेणी के प्रायः निबध ऐसे दृष्टिगत होते हैं जिनमें तथ्य-प्रकाश की मात्रा अधिक है। 'आप'-श्रेणी के निबंधों में वैज्ञानिक तथ्य-प्रकाश पर निबंधकार की दृष्टि बहुत ही कम लक्षित होती है, इस पर विचार हो चुका है। 'धोखा' श्रेणी के निबंधों में विषयानुकूल तथ्य-प्रतिपादन में निबंधकार की दो शैलियों के दर्शन स्पष्टतः होते है। एक शैली मे तो सच्ची विवेचनात्मकता के दर्शन होते है और दूसरी मे युक्ति और कौशल के दर्शन। प्रथम शैली के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। द्वितीय शैली का प्रमाण 'धोखा' शीर्षक निबंध है। इसमे निबंधकार ने सयुक्ति और सकौशल यह प्रतिपादित किया है कि इस संसार मे जो कुछ है सब धोखा है। और, उसने इस ढंग से विषय का प्रतिपादन किया है कि प्रायः सभी बाते मान्य हो सकती है। इस प्रकार 'धोखा'-श्रेणी के निबंधों मे गाभीर्य की निहिति के कारण स्पष्ट है। 'धोखा' शीर्षक निबध मे तो गाभीर्य का कारण यह है कि इसमे प्रायः ईश्वर, जीव तथा जगत् की चर्चा आ गई है। इस कारण इनके विषय मे निबधकार को कुछ दार्शनिक बातें भी कहनी पड़ी है, जिनके कारण कुछ गाभीर्य स्वभावतः आ गया है। परतु गाभीर्य इतना नहीं आ गया है कि निबध बोझिल हो उठा हो।

श्रीबालकृष्ण भट्ट भारतेंदु-युग के विचार प्रधान निबंधकारो के प्रतिनिधि है—कई दृष्टियों से। एक तो इनके निबंधो मे विचारात्मक निबधों का आधिक्य है, दूसरे विषय का चुनाव विचारात्मक है, तीसरे शैली विवेचनामयी है और चौथे इनके निबंधों मे अधिक निबंध ऐसे है जिनका सबध मनोविकारों से है, जिनके प्रतिपादन मे विवेचना की आवश्यकता पड़ती है। श्रीबालकृष्ण भट्ट द्वारा विचार-प्रधान निबंधों की रचना का कारण भी है। इनका सारा जीवन अध्ययन-मनन और अध्यापन में ही व्यतीत हुआ; उसमे भी संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-मनन और अध्यापन मे। ये संस्कृत के अच्छे पडित थे। संस्कृत-साहित्य के अध्ययन-मनन की छाप इनके निबंधो पर भी पडी, जिसके कारण निबधों में विचारात्मकता का प्राधान्य वा आधिक्य होना स्वाभाविक है। तात्पर्य यह कि इनके निबधों में गाभीर्य के प्राधान्य का कारण विद्या की ओर इनकी विशेष प्रवृत्ति का होना है। इसका प्रमाण इनके निबंधों की विचारशीलता तो है ही, उनमे भारतीय तथा सस्कृत-साहित्य के उद्धरण और उदाहरण भी इसके प्रमाण हैं।

यथास्थल इसका उल्लेख हुआ है कि भारतेंदु-युग के निबधकारों में किसी वस्तु वा विषय को लेकर हठधर्मिता की प्रवृत्ति नहीं लक्षित होती। उनमें विचारों

की उदारता अत्यधिक मात्रा में थी। वह युग ही उदार प्रवृत्तियो का था। हम कहना यह चाहते है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट की प्रवृत्ति भारतीय सस्कृति और साहित्य की ओर विशेष होते हुए भी अन्य देश के साहित्यो से पराङ्मुख न थी। अँगरेजी साहित्य की बहुत सी वस्तुओं तथा उस भाषा के शब्दों का प्रयोग भी वे निःसकोच भाव मे करते थे। उनके निबधो को देखने से यह बात स्पष्टतः लक्षित होती है। भारतेंदु युग के निबधकारो मे से अँगरेजी शब्दो का अत्यधिक प्रयोग करनेवाले श्रीबालकृष्ण भट्ट ही दिखाई पडते है। अँगरेजी शब्दों के प्रयोग का तात्पर्य यह है कि ये शब्द कोष्ठकों मे रहते थे और इनके हिंदी पर्यायवाची बाहर। अँगरेजी शब्दों के हिंदी-पर्याय-निर्धारण मे तब और अब मे कुछ अंतर दिखाई पडता है। उस समय बहुत से ऐसे शब्द निर्धारित किए जाते थे जो आज उतने उपयुक्त नहीं समझे जाते। जैसे, श्रीबालकृष्ण भट्ट ने 'जातीयता' का प्रयोग 'नेशनैल्टी' के अर्थ मे किया है और आज 'नेशनैल्टी' से 'राष्ट्रीयता' का मतलब लिया जाता है। आज 'जातीयता' से 'कम्युनलिज्म' का अर्थ ध्वनित होता है। बॅगला मे 'जातीयता' का प्रयोग 'राष्ट्रीयता' के अर्थ मे अब भी होता है। 'नेशनैल्टी' के लिए 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रयोग हिंदी मे सबसे पहले काशी के दैनिक समाचार पत्र 'आज' मे हुआ; तब भी इसके सपादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर थे। अस्तु। ऐसे ही बहुत से अँगरेजी शब्द है, जिनका उस समय का हिंदी-पर्याय कुछ और था और आज कुछ और है। एक बात और कहनी है। लोगो की धारणा प्रायः यह है कि हिंदी में अँगरेजी शब्दो के प्रयोग—हिंदी-पर्याय सहित—का आरभ द्विवेदी-युग मे हुआ—अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगो को हिंदी की ओर उन्मुख करने के लिए। परतु बात ऐसी नहीं जान पडती। भारतेंदु-युग से ही अँगरेजी शब्दों के प्रयोग की अच्छी चाल दिखाई पडती है।

यह कहा गया है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट विचारात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन्होने अन्य शैली के निबध लिखे ही नहीं। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के पश्चात् ये ही एक ऐसे निबधकार दृष्टिगत होते हैं जिन्होंने सभी प्रकार के निबधों की रचना की है और भलीभाँति सफल भी हुए है। विचारात्मक निबधकारो का प्रतिनिधित्व तो किया ही है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचारात्मक निबध सामान्यतः तीन कोटि के मिलते है। प्रथम कोटि उन निबधों की है जिनके विषय व्यावहारिक और जीवन से सबद्ध है; परतु वे जिस पद्धति पर लिखे गए है वह विवेचनात्मक और साहित्यिक है। अभिप्राय यह कि शैली के कारण वे साहित्यिक और विवेचनात्मक कोटि

के निबधों मे आते है। इस कोटि के कुछ निबध ये हैं—'माता का स्नेह', 'आँसू', 'लक्ष्मी', 'कालचक्र का चक्कर' आदि। द्वितीय कोटि उन निबधो की है जिनके विषय का सबंध भी साहित्य से है और जिस शैली मे वे लिखे गए है वह भी साहित्यिक और विवेचनात्मक है। इस प्रकार इस कोटि के निवध विषय तथा शैली दोनो दृष्टियों से साहित्यिक है। इस कोटि के कुछ निबधो के नाम है—'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है', 'कवि और चितेरे की डाड़ामेड़ी', 'शब्द की आकर्षण शक्ति', 'प्रतिभा', माधूर्य', 'साहित्य का सभ्यता से घनिष्ठ सबध है' आदि। द्वितीय कोटि के निबंधो मे भी स्पष्टतः दो प्रकार लक्षित होते है। इसमे कुछ निबध तो ऐसे है जिनका सबध विशुद्ध साहित्य वा साहित्य-शास्त्र से है और कुछ ऐसे है जिनका सबध मुख्यतः साहित्य के व्यावहारिक रूप से है। 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकाश है', 'साहित्य का सभ्यता से घनिष्ठ सबंध है' आदि निबध इसी प्रकार के है। 'कवि और चितरे की डाड़ामेडी', 'शब्द की आकर्षण शक्ति', 'प्रतिभा', 'माधूर्य' आदि निबध विशुद्ध साहित्य वा साहित्य-शास्त्र से सबद्ध है। इसी कारण इन निबधों मे विशुद्ध समीक्षा की विशेष सामग्री प्राप्त होती है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के विचारात्मक निबधो की तृतीय कोटि के अतर्गत वे निबंध आएँगे जो हृदय वा बुद्धि की वृत्तियो वा मनोविकारो पर लिखे गए है। 'चरित्रपालन', 'चारुचरित्र', 'आत्मनिर्भरता', 'जवानी की उमगे', 'आशा', 'आत्मगौरव', 'स्थिर अध्यवसाय या दृढता', 'सुख दुःख का अलग अलग विवेचन', 'रुचि', 'भिक्षावृत्ति', 'दृढ और पवित्र मन', 'परचित्तानुरजन', 'निवृत्ति', 'खटका', 'विश्वास', 'बोध, मनोयोग और युक्ति', 'सुख क्या है?' आदि निबध इसी प्रकार के है। भारतेदु-युग के निबधा की सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए मनोविकारो पर लिखे गए निबधों के विषय मे कुछ विचार किया जा चुका है। यह कहा जा चुका है कि नित्यप्रति के जीवन मे मनोविकारों वा मन और हृदय की वृत्तियों का जो रूप समुख आता है, इन निबधो मे उसी व्यावहारिक रूप का वर्णन है। अभिप्राय यह कि इस प्रकार के निबधो के विचार का आधार प्रधानतः व्यावहारिक जीवन ही है। व्यावहारिक जीवन मे मनोविकारों का जो रूप हमारे समुख प्रायः आया करता है केवल उन्हीं का विचार इनमे किया गया है। इन मनोविकारों की मूल प्रवृत्ति की सारगर्भित विवेचना के पश्चात् इनके व्यावहारिक रूप का वर्णन उपर्युक्त निबंधो मे नहीं मिलता है जैसा कि आचार्य रामचद्र शुक्ल के मनोविकारो पर लिखे गए निबंधों में प्राप्त है। इसीलिए यह कहा गया है कि आचार्य रामचद्र शुक्ल के इस प्रकार

के निबंधो की ये भूमिका मात्र हैं, उनके विकास के आरभिक रूप ही हैं। इस मीमासा के साथ ही यह भी कह देना आवश्यक है कि श्रीबालकृष्ण भट्ट के इस प्रकार के निबधो में यत्र-तत्र ऐसे स्थल भी लक्षित होते है जहाँ उनकी दृष्टि मनोवृत्तियो के मूल रूप की विवेचना पर भी है। 'आशा' आदि निबध इसी ढंग के है। इन निबधों मे से कुछ ऐसे है जिनमे कुछ आत्मव्यजकता और मनोरजकता का भी पुट है। 'रुचि' आदि ऐसे ही निबध है। कुछ ऐसे भी हैं जिनमे सामाजिकता का पुट विशेष है। जैसे, 'भिक्षावृत्ति' मे। यह कहा जा चुका है कि भारतेंदु युग मे मनोविकारो पर कुछ ऐसे निबध भी लिखे मिलते है, जिनका लक्ष्य शिक्षा देना है। श्रीबालकृष्ण भट्ट के भी कुछ ऐसे निबध है। जैसे 'चरित्रपालन', 'चारु चरित्र', 'आत्मनिर्भरता', 'जवानी की उमंगे' आदि निबंध।

ये विचारात्मक निबध जिनकी चर्चा ऊपर हुई है ऐसे निबधकार द्वारा लिखे गए है जिसका अध्ययन-मनन विस्तृत और गाभीर्य था। ऐसी स्थिति में इन निबधो की शैली मे विचारशीलता और गभीर है। इनमे सस्कृत के उद्धरण और उदाहरण भी बहुलता से मिलते है। इन निबधों के रचयिता विचार-शील और अध्ययनशील व्यक्ति थे, अतः इनमे विचारों की मौलिकता भी प्रायः मिलती है। अभिप्राय यह कि जिस विषय के सबध मे सामान्यतः जो विचार प्रचलित है उन विचारो के अतिरिक्त कुछ निबधकार के अपने विचार भी इन निबधों मे विद्यमान है। भारतेदु-युग मे कुछ निबधकार ऐसे भी हुए जिनमें शैली आदि की दृष्टि से विशिष्टता लक्षित होती है परतु उनके विचार प्रायः वैसे ही है जैसे सामान्यजन मे प्रचलित है। श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय ऐसे ही निबंधकार दिखाई पडते हैं। श्रीबालकृष्ण भट्ट के निबधां में शैलीगत अपना-पन तो है ही।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के भावात्मक निबंधों मे चद्रोदय' बडा प्रसिद्ध है। यह उनके भावात्मक निबंधो का प्रतिनिधि भी है। प्रायः सभी निबधकारों के कुछ निबध ऐसे मिलते है जिनमें 'कला कला के लिए' वाला सिद्धात पूर्णतः लागू होता है। ऐसे निबधों मे निबधकार की दृष्टि अपनी साहित्यिक चातुरी प्रदर्शित करने की ओर अवश्य लक्षित होती है। चातुरी-प्रदर्शन के लिए वाणी के चम-त्कार का अवलबन करना स्वाभाविक है। इस कारण ऐसे निबधों मे काव्यात्मकता आ गई है। 'चंद्रोदय' ऐसा ही निबध है। इस प्रकार के निबधो मे भावा-त्मकता की निहिति का तात्पर्य यह नहीं है कि बेकार की ऊलजलूल बातो का समावेश किया जाय, जिनका संबंध निबंध के विषय से कुछ भी न हो। भावा-

त्मक निबंधो मे भी यह देखा जाता है कि निबंधकार निबंध के विषय का प्रतिपादन अवश्य करता है और निबंध का सर्वप्रमुख तत्त्व प्रतिपादन ही है। हाँ, यह प्रतिपादन भावात्मक शैली के सहारे अवश्य होता है। स्मरण रखने की बात यह है कि भावात्मक निबंधो में भावात्मकता की प्रधानता रहती है, अर्थात् विचारात्मकता की नियोजना भी उसमें होती है, परंतु गौण रूप से। श्रीबालकृष्ण भट्ट के 'चंद्रोदय' शीर्षक निबंध में तो आद्योपात भावात्मकता है। 'पौगड वा कैशोर' और 'मुग्धमाधुरी' उनके ऐसे निबंध है जिनमे भावात्मकता के साथ-साथ विचारात्मकता भी है। 'मुग्धमाधुरी' मे यत्र-तत्र विचारशीलता के साथ ही प्रधानता ऐसे स्थलों की है—

रूप की इस मुग्धमाधुरी का कुछ क्रम ही निराला है कि जो मुखच्छबि रेख भीनते भीनते पूनो के चॉद सी सोहती थी वही जवानी के आते ही मोछो की कालिमा मे कलुषित हो सेवार के जाल से ढँपे हुए कमल की शोभा धर लेती है।

'कल्पना-शक्ति', 'जी', 'नाक', 'द' आदि आत्मव्यंजक निबंध भी श्रीबालकृष्ण भट्ट द्वारा प्रस्तुत हुए है। ये निबंध ठीक वैसे ही है जैसे आत्मव्यंजक निबंधकारो के प्रतिनिधि श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंध। आत्मव्यंजकता, मनोरंजकता, अक्षर, शब्द और मुहावरों को लेकर चमत्कार-प्रदर्शन, प्रतिपादन की शक्ति और पटुता, समय की छाप आदि सभी तत्त्व उपर्युक्त निबंधों मे प्राप्त होते है। अभिप्राय यह कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र के आत्मव्यंजक निबंधों की जो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है वे ही श्रीबालकृष्ण भट्ट के आत्मव्यंजक निबंधो की भी। उनके इस श्रेणी के निबंधो को देखने से विदित होता है कि यद्यपि वे भारतेंदु-युग के विचारात्मक निबंधकारो के प्रतिनिधि थे और इसी क्षेत्र मे उनका कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण रहा तथापि उनमे जिंदःदिली की मात्रा किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

श्रीबालकृष्ण भट्ट का 'कल्पना-शक्ति' नामक निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्र के 'धोखा'-कोटि के निबंधों के ढंग का है। यह एक लघु निबंध है। एक उद्धरण द्वारा इसकी सारी प्रवृत्तियाँ लक्षित हो जायँगी—

यावत् मिथ्या और दरोग की किबलेगाह इस कल्पना पिशाचिनी का कहीं ओर छोर किसी ने पाया है! अनुमान करते करते हैरान गौतम से मुनि 'गोतम' हो गए। कणाद किनका खा खा कर तिनका बीनने लगे पर मन की मनभावनी कन्या, कल्पना, का पार न पाया। कपिल बेचारे पचीस तत्त्वो की कल्पना करते करते "कपिल" अर्थात् पीले पड़ गए।

व्यास ने इन तीनो महादार्शनिकों की दुर्गति देख मन मे सोचा कौन इस भूतनी के पीछे दौड़ता फिरे, यह सपूर्ण विश्व जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सकते हैं सब कल्पना ही कल्पना, मिथ्या, नाशवान और क्षणभंगुर है; अतएव हेय है।"

'जी' और 'नाक' भी 'कल्पना-शक्ति' की भाँति ही लघु निबंध हैं। 'जी' नामक निबंध मे 'जी' शब्द के प्रयोग की व्यापकता का वर्णन है। 'जी' शब्द के सहारे चमत्कार भी खडा किया गया है। 'जी' के मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। 'नाक' नामक निबंध मे निबंधकार की दृष्टि नाक के मुहावरों पर विशेष है। इसमे यत्र तत्र सामाजिकता के दर्शन भी होते है। ये निबंध श्रीप्रतापनारायण मिश्र के 'आप'—कोटि के निबंधो के अतर्गत रखे जा सकते है। इनमे मनोरजकता की अधिकता और विचारात्मकता की अल्पता है। जैसे—

साधारण बातचीत मे यह जी भी जी का जंजाल सा हो रहा है। अजी बात ही चीत क्या जहाँ और जिसमे देखो उसी मे इस जी से जीते जी छुटकारा नहीं देख पडता। साहब यह आप क्या कहते है जी से जी को राहत है; जी मत चुराओ हम जो कहे उसे सुनते चला और इस जी की उलझी गांठ सुलझाते जाओ।

× × ×

"नाक निगोड़ी भी क्या ही बुरी बला है जिसके नहीं तो उसका फिर जीना ही क्या। कहावत है 'नकटा जिया बुरे हवाल'। है तो न जानिए क्या-क्या फसाद बरपा करती ज़रा ज़रा सी बात मे इसके कट जाने का डर लगा रहता है। नित्य के भोजनाच्छादन मे बड़े संकुचित भाव से रहते हैं, निहायत तंग दस्त फटे हाल से ज़िदगी पार कर रहे हैं यहाँ लो कि पेट भर खाते तक नहीं मोटा झोटा पहिन रूखा सूखा खा पी किसी तरह गुज़ारा करते हैं पर नाक की जगह राज़ा करन से उदार हो जी खोल शाह खर्च बन बैठते हैं। पास न हुआ तो कर्ज़ अपने ऊपर लाद लेते हैं वर्षों तक वरन ज़िंदगी भर ऋण से उद्धार नही पाते पर बिरादरी और पंच के बीच नाक नहीं कटने देते। गरदन कट जाओ बला से पर नाक न कटने पावे। चाखे लोग आन वाले नाक पर रख देते हैं पर हेठी नहीं सहते। भगवान् ऐसो के नाक की लाज रख भी देता है।.....।

कहना न होगा कि इन निबंधो मे भी भावात्मक निबधों की भाँति निबंधकार की दृष्टि चमत्कार-प्रदर्शन पर विशेष लक्षित होती है। अतः 'कला के लिए कला' वाला सिद्धात इनके विषय में भी लागू किया जा सकता है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाँति श्रीबालकृष्ण भट्ट ने भी अक्षरो पर निबध लिखे है। 'द' शीर्षक निबध मे शब्दो में 'द' अक्षर की व्यापकता का वर्णन है। इसमें भी मुहावरो का प्रयोग अच्छा है। समय की छाप भी इस निबध मे है। जैसे, इसमे एक स्थल पर यह दिखाया गया है कि हिंदू लोग दास रहने के अच्छे आदी है। अँगरेजो पर भी इसमें व्यग्य है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट के वर्णनात्मक निबंधो में 'प्रेम के बाग का सैलानी' और 'ससार-महानाट्यशाला' उल्लेख्य है। प्रथम निबध में प्रेम का महत्त्व गाया गया है। द्वितीय निबध का प्रतिपाद्य यह है कि ईश्वर हम सभी को अपने मन के अनुसार नचा रहा है। इन निबधो का शीर्षक रूपकात्मक है, अतः इनमे रूपक बाँधने का प्रयत्न है। ये निबध वर्णनात्मक है। ऐसी स्थिति मे इनमे निबधकार की वृत्ति वर्णनात्मक स्थलो पर प्रायः रमती हुई चलती है, इस कारण इन निबंधों मे काव्यात्मक स्थल भी आए है। इन उदाहरणो से बात स्पष्ट हो जायगी—

'प्रेम का बाग' यह हम इसलिए कहते हैं कि इस बाग मे सब भाँति प्रेम ही प्रधान है। प्रेम ही इस बाग का माली है, प्रेम ही की सुगंधित कली हृदय के आलबाल मे खिल इस बगीचे के सैलानी को प्रमुदित करती है। इस प्रेमवृत्ति की जड़ बहुत नीचे है। इसकी प्रस्फुटित कली वियोग की एकात चिंता ओस से सिंचित हो मुरझाने पर भी अपनी महक नहीं छोड़ती किंतु बार बार की सुधरूपी प्रातःसमीरण से अधिक अधिक पुष्ट बढ़ती जाती है और अपने प्रेमी से मिलने की प्रखर इच्छा के सूर्योदय से इस कली की आशारूपी पखुरियाँ खुलती जाती है।

× × ×

स्वभावमधुराकृति प्रकृति उस महा सूत्रधार की सहचारिणी नर्तकी इस नाट्यशाला की नटी है। पृथक् पृथक् नाम रूप मे विचित्र वेषधारी जीव समूह सब उस बड़े नटनागर की नाट्यशाला के सहकारी नट हैं।

श्रीबालकृष्ण भट्ट का एक ही कथात्मक निबध मिल पाया है। उसका नाम है 'एक अनोखा स्वप्न'। इस निबंध का प्रतिपाद्य यह है कि इस ससार मे किसी भी देश के प्राणी सुखी नहीं है। चाहे वे धनी देश के हों चाहे निर्धन देश के। जो धनी है वे अपने धन के कारण दुःखी है और जो निर्धन है वे तो कष्ट मे हैं ही। धनिकों के दुखी होने का कारण यह है कि धन के कारण उनमें अविद्या का संचार हो जाता है। अविद्या का आक्रमण उन पर अकेले नहीं होता। वह अपने अन्य सखा-सखी दुर्गुणों को साथ लेकर उन पर धावा बोलती

है, जिनके कारण धन के रहते हुए भी वे कष्टमय जीवन व्यतीत करते है। निबंध मे देश-काल के भी चित्र मिलते है। जैसे, एक स्थान पर अविद्या धनिकों के लिए कहती है कि ये सभी ब्रिटिश सिंह के पंजे में है और उसकी खुशामद किया करते है। ऐसे ही अन्य स्थल भी आए है जिनके द्वारा तत्कालीन समाज के रूप-दर्शन होते है। निबंध मे देश-प्रेम की पूरी छाप लक्षित होती है। भारतवर्ष की दुर्दशा पर निबंधकार को बडा दु:ख है :—

अकाल महामारी आदि अनेक भयंकर बडे-बडे उत्पात देख कल रात को पडा-पडा मै सोच रहा था कि यह ससार केवल दुःख का आगार है पर यहाँ के रहनेवाले प्रमाद मदिरा का पान कर ऐसा उन्मत्त हो रहे हैं कि अपने-अपने को सभी सुखी माने हुए हैं और यह निश्चय नहीं होता कि वास्तव मे कोई सुखी है या नहीं। • अपना सुख और आराम इन (धनिकों, राजाओ) का सिद्धांत है सर्वसाधारण प्रजा मात्र का लाभ और उपकार क्या वस्तु है सो ये जानते ही नहीं। शरीर इनका हीरा जवाहिरो की जगमगाहट से चमक रहा है पर हृदय मे गाढ़ा अंधकार छाया हुआ है।

भारतेंदु-युग के कथात्मक निबंधो की सामान्य प्रवृत्तियो पर विचार करते हुए कहा जा चुका है कि इनमे वर्णनात्मक स्थलो का बाहुल्य होता है। और, इस युग के इस कोटि के अन्य निबंधो मे यह तत्त्व प्राप्त भी है। इसे हम देख चुके है। किंतु 'एक अनोखा स्वप्न' मे वर्णनात्मकता का प्राधान्य नही है। इसमे विचारात्मकता का आधिक्य है।*

श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबंधकारों के प्रतिनिधि है। ये श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के अनुज थे। उनकी कुछ प्रवृत्तियाँ इनमे भी लक्षित होती है। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि साहित्य के कला पक्ष वा उसकी रचना के चातुर्य-पक्ष की ओर विशेष रहती थी। अतः वे प्राय आलंकारिक शैली का उपयोग करते थे। ठीक यही प्रवृत्ति श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय मे भी मिलती है। इनकी रचनाएँ भी प्रायः 'आनंद कादंबिनी' मे प्रकाशित है। इनके निबंधों का एक संग्रह 'साहित्य हृदय' (प्रथम भाग) नाम से प्रकाशित है। इसके संपादक श्रीनर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय एम० ए०,

* यहाँ श्रीबालकृष्ण भट्ट के जिन निबंधो का उल्लेख किया गया है वे सभी हिंदी-प्रदीप' मे प्रकाशित है। कुछ का उल्लेख उनके निबंध-संग्रह 'साहित्य-सुमन' नामक पुस्तक से किया गया है। ये निबंध भी 'हिंदी-प्रदीप' मे प्रकाशित हो चुके है।

एल-एल० बी० है। उपर्युक्त पुस्तक के सपादक ने पुस्तक की 'प्रवेशिका' मे श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय की प्रकृति तथा इनकी साहित्यिक प्रवृत्ति के विषय मे भी कुछ कहा है। उनका कथन है कि श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय हिंदी-साहित्य मे निबंध-रचना के लिए ही अवतरित हुए थे, और इनके सभी निबध 'स्वान्तः सुखाय' लिखे गए है। बाल्यावस्था से ही इनमे आध्यात्मिक प्रवृत्ति तथा विद्या की ओर अगाध स्नेह के कारण इनके निबधो के विषय वा उनका प्रतिपाद्य प्रायः दर्शन और साहित्य है। ऐसी अवस्था मे ये निबध सामान्य लोगों के लिए नहीं प्रत्युत साहित्यको के लिए ही लिखे गए है। उक्त 'प्रवेशिका' मे श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के प्रकृति-प्रेम का भी उल्लेख किया गया है। ये प्रकृति के सभी रूपो से प्रेम करते थे, उसके मधुर और कोमल रूप से भी तथा विशाल और विराट् रूप से भी। प्रकृति के उपासक कवि वर्ड्सवर्थ के प्रति इनके झुकाव की चर्चा भी उसमे है। इनकी शैली के विषय मे कहते हुए कहा गया है कि ये बाणभट्ट की शैली के अनुयायी थे, किंतु उसमे इनका अपनापन भी है। यह भी कहा गया है कि अँगरेज लेखक काउपर की ओर इनकी अभिरुचि विशेष थी, जो रात-दिन सिगार मे लगा रहता था। स्मरण रखने की बात यह है कि श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के विषय मे ये बातें उनके एक नजदीकी व्यक्ति द्वारा कही गई है।

श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के निबधो की सबसे बडी विशेषता है उनमे वर्णनात्मकता की स्थिति, जिसका सबध काव्यत्व से है; अर्थात् ऐसे स्थलो को लाने से है जिससे पाठक वा श्रोता की वृत्ति रमती हुई चले। वर्णन की ओर अधिक रुचि होने के कारण निबधकार निबध मे वर्णनसापेक्ष्य स्थलों के आ जाने पर बिना वर्णन किए आगे नहीं बढता। वर्णनात्मक स्थलो को निबधकार प्रायः लाता भी रहता है। इनके निबधों मे वर्णनात्मकता की स्थिति के कारण ही उनमे साहित्यिकता वा काव्यत्व अत्यधिक है, जो स्वाभाविक भी है—निबधों के वर्णनात्मक होने के कारण। वर्णन के आधिक्य के कारण श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के निबधो मे विषय का प्रतिपादन कम मिलता है और जो मिलता भी है उसमे कोई मौलिकता नही लक्षित होती। जहाँ तक निबधो के विषय का सबध है वहाँ तक उसमे कोई निबधकार का चमत्कार नहीं दिखाई पडता। इस क्षेत्र मे ये प्रायः दूसरों के विचारो अथवा सामान्य प्रचलित विचारो का ही प्रतिपादन करते हुए देखे जाते है। इनके विचार भी प्रायः प्राचीनो के-से है। इनके वर्णनात्मक निबंधों की शैली आलंकारिक अवश्य है, जिस पर बाणभट्ट का प्रभाव देखा जा सकता है; जैसा कि श्रीनर्मदेश्वर प्रसाद उपाध्याय ने कहा है।

ऊपर कहा गया है कि दर्शन की ओर इनकी रुचि विशेष थी। इसका परिणाम यह हुआ है कि इनके जो निबंध आध्यात्मिक विषयों के नहीं है, उनमे भी इसका प्रसंग आ जाने पर ये आध्यात्मिक विषयो की चर्चा विस्तार से करते है। 'पुस्तकों की महिमा'* मे यह बात देखी जा सकती है।

विद्या की ओर निबंधकार की रुचि वा उसके व्यापक अध्ययन को दर्शन भी उसके निबधों मे प्रायः विदेशी विद्वानो के उद्धरणों की स्थिति के द्वारा हो सकते है। निबध के आरभ मे तो कोई न कोई उद्धरण निबधकार अवश्य रखता है, और निबध के अत मे प्रायः भावात्मक शैली मे प्रतिपाद्य विषय का स्तवन करता है। 'पुस्तकों की महिमा',* 'प्रेम',† 'लक्ष्मी'‡ आदि निबधो के देखने से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

निबधों मे यत्र-तत्र निबधकार ने अपने जीवन से सबद्ध मित्रो, घटनाओं, वस्तुओं आदि का उल्लेख किया है। इनके निबंधो मे न समय की छाप ही मिलती है और न हास्य-व्यंग्य और विनोद की स्थिति ही, जो भारतेंदु युग के निबधो की प्रमुख प्रवृत्ति है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय को भारतेंदु-युग के वर्णनात्मक निबधकारों का प्रतिनिधि इसी कारण स्वीकार किया गया है कि सभी प्रकार के निबधों को प्रस्तुत करते हुए इनकी दृष्टि वर्णन पर ही विशेष रहती है। वर्णन मे यदाकदा भावात्मकता का पुट भी आ जाता है। इसे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इन्होने विशुद्ध वर्णनात्मक निबध नहीं लिखे है, अवश्य लिखे है, और उन्हीं मे इनकी पूर्ण कला का प्रकाश मिलता है।

श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के निबंधो की एक कोटि और है, और वह है विचारात्मक निबंधो की। इनके विचारात्मक निबंधो के सामान्यतः तीन विषय है। एक साहित्य, दूसरा मनोविकार और तीसरा जीवन वा समाज। साहित्य विषय पर लिखा हुआ निबंध 'कविता'†† है। यद्यपि यह निबध विचारात्मक है तथापि इसमे वर्णनात्मक तथा भावात्मक स्थल विद्यमान है। निबध मे कविता के संबध मे कोई नवीन वा मौलिक विचार नहीं व्यक्त हुए है। इसमे प्रायः प्रचलित प्राचीन विचारों का ही उल्लेख मिलता है। विद्वानो के उद्धरण भी इसमें अनेक है। निबध मे निबधकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति यत्र-तत्र हुई है। एक स्थान पर निबधकार कहता है कि जब मै एक बार विपद्ग्रस्त हुआ तब

---

* साहित्य-हृदय (प्रथम भाग) पृष्ठ ६।

† वही, पृष्ठ ५२। ‡ वही, पृष्ठ ३७। †† वही, पृष्ठ २२।

कवियों वा उनके काव्यो ने ही मुझे बचाया। इसी प्रकार एक स्थल पर वह यह भी कहता है कि जिन लोगों की रुचि काव्य और प्रेम की ओर नहीं है उनसे मैं नमस्कार-प्रणाम के अतिरिक्त और कोई व्यवहार नहीं रखूँगा, चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हो।

'प्रेम',* 'सन्तोष',† 'क्षमा'‡ 'आनद'‡‡ आदि इनके मनोविकारो पर लिखे गए निबध हैं। परतु इनमे मनोविकारों पर दृष्टि रख कर साहित्यिक विवेचन नहीं किया गया है। इन निबधों मे इन मनोविकारो का जीवन मे व्यावहारिक वा चलता रूप क्या है, इसी का वर्णन है। इनके प्रतिपादन मे विचारात्मकता का प्राधान्य अवश्य है, परतु वर्णनात्मक और भावात्मक स्थल भी आए है। इनमे निबधकार के व्यक्तित्व की छाप भी मिलती है। 'क्षमा' मे वर्णनात्मकता तथा भावात्मकता कम है। 'आनद' मे आध्यात्मिक पुट विशेष है।

जीवन वा समाज से संबद्ध निबंधों के अन्तर्गत सामान्यतः ये निबध आते है—'मित्र,'⊙ 'पुस्तकों की महिमा',¶ 'लक्ष्मी',|| 'विवाह'.§ 'जन्मभूमि', ●। इन विचारात्मक निबधो की प्रवृत्ति ठीक वैसी ही है जैसी उपर्युक्त दोनों प्रकार के निबधों की। 'लक्ष्मी' शीर्षक निबध के अंत मे निबंधकार लक्ष्मी से अपने पर तथा भारतवर्ष पर कृपा करने की प्रार्थना करता है।

श्रीहरिश्चद्र उपाध्याय के विशुद्ध वर्णनात्मक निबधों के विषय निबध के प्रकार की दृष्टि से बड़े उपयुक्त है। कुछ का सबध ऋतु से है, कुछ का पर्व-त्योहार से, कुछ का स्थान से और कुछ ऐसे है जिनका सबध निबधकार के जीवन से होने के कारण उसने उन्हें वर्णनात्मक रूप दिया है। 'फाल्गुन',★ 'आषाढ़ का आरभ',§§ 'शरद'× आदि निबधों का सबंध ऋतुओ से है। 'फाल्गुन' शीर्षक निबंध मे कहा गया है कि पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा तथा सभ्यता से अभिभूत होने के कारण हम स्वाभाविक त्योहारों को भी नहीं मना पाते। 'शरद' शीर्षक निबध मे वैयक्तिकता की सस्थिति विशेष है। इन निबंधो का सबध ऋतुओं से होने के कारण प्रकृति से भी है। परतु इनमे प्रकृति का यथार्थ सश्लिष्ट चित्रण नहीं है, प्रत्युत प्रायः आलकारिक चित्रण ही है। एक स्थल देखे—

बादलो ने ऐसा गर्जन आरभ किया मानो महेद्र अपनी सकल स्वर्गीय सेना के साथ गगन कानन मे परिभ्रमण करते, सहस्रो मेघ

* वही, पृ० ५२। † वही. पृ० १००। ‡ वही, पृ० १२१।
‡‡ वही, पृ० १५५। ⊙ वही, पृ० १। ¶ वही, पृ० ९।
|| वही, पृ० ३७। § वही, पृ० ६७। ● वही, पृ० १११।
★ वही, पृ० ९१। §§ वही, पृ० ८१। × वही, पृ० २०४।

मातंगो पर अकस्मात् विद्युत बाण का दारुण प्रयोग करते और वे बेचारे विह्वल हो आर्तनाद कर रहे है। वा सम्राट् सुरेंद्र के आगमन मे कर्णों को बधिर करनेवाली शतघ्नियो की बाढ़ें छूट रही हैं। (आषाढ़ का आरंभ)

एकाध स्थल पर विशुद्ध प्रकृति-वर्णन भी है—

आकाश मे चिड़ियाँ कैसी लंबी-लंबी चुम्भी मार-मार कर नीचे आने का प्रयत्न कर रही हैं। गौ आदि पशु जंगलो से भागते, शोर मचाते, इस भयंकर तूफान की सूचना देते, घारी की ओर भागते चले आ रहे हैं। भेड़, बकरी आदिक जो प्रकृत्या मंदगामिनी होतीं, वे भी इस समय ऐसे वेग से अपने-अपने चरवाहे और कुत्तो के साथ-साथ भागी चली आ रही हैं, मानो वायु ने उनके शरीर मे बिजली भर दी हो। (वही)

पर्व-त्योहार पर लिखे गए निबंध 'श्रीशीतलगंज की जन्माष्टमी',* 'श्रीशीतलगंज की द्वितीय जन्माष्टमी',† आदि है। इनमे 'कादम्बरी' की वर्णन-शैली का अच्छा अनुकरण यत्र तत्र मिलता है। जैसे—

रसिक राज होते हुए भी योगिराज; रात्रि को सब गोपिकाओ की सेज पर सोते हुए भी घर के बाहर पाँव न निकालनेवाले; संसार की चिताग्रस्त वीथियों मे विचरते हुए भी निश्चित; रूप अग्नि मे रहते हुए भी जिसके पॉत्र नहीं जले; गोपाल होते हुए भी लोकपाल; आभीर होते हुए भी पंडित; मधुरिपु होते हुए भी मधुप्रिय; बंसीवाले होते हुए भी बंसी के लगानेवाले नहीं; त्रिभुवन विजयी पर नृपति नहीं, गोपिका रासमंडल मे विचरनेवाले पर नक्षत्र नहीं...... । (श्रीशीतलगंज की जन्माष्टमी)

स्थान से संबंध रखनेवाले निबंध 'लखनऊ' ⊙ आदि है। 'लखनऊ' शीर्षक निबंध में वहाँ के मनुष्यों तथा स्थानों का वर्णन है।

'हमारी मसहरी' ‡‡ और 'हमारी दिनचर्य्या' ● शीर्षक निबंध बड़े ही प्रौढ़ वर्णनात्मक निबंध है। वर्णन की 'कादंबरी' वाली शैली का अनुकरण इनमे भी मिलता है। इन निबंधों द्वारा निबंधकार की दोनों प्रधान प्रवृत्तियो—प्रकृति-प्रेम तथा अध्यात्म-प्रेम—का अच्छा परिचय मिलता है। 'हमारी दिनचर्य्या में निबंधकार के प्रकृति-प्रेम का अच्छा रूप लक्षित होता है। इसमे प्रकृति-क्षेत्र मे पर्यटन का ही वर्णन है। 'हमारी मसहरी' शीर्षक निबंध में इसका वर्णन है कि मसहरी 'यह' है और 'वह' है। इसमें 'सूर्योदय' तथा 'चंद्रोदय' की काव्यात्मक वर्णन-शैली के दर्शन होते हैं। निबंधकार मसहरी मे बैठा-बैठा अपनी कल्पना

---

* वही, पृ० १२८। † वही, पृ० १७७। ⊙ वही, पृ० १९२।
‡‡ वही, पृ० १३७। ● वही, पृ० १४३।

द्वारा अनेक ऋषि-मुनियों, विद्वानों आदि का साक्षात्कार करता है और उनके निवासस्थान तक जाता है। इस निबंध में काल्पनिकता विशेष है। यह वाक्-पटुता के प्रदर्शन तथा मनोरंजन के लिए लिखा गया प्रतीत होता है।

निबंध प्रस्तुत करने की शैलियों की दृष्टि से भारतेंदु-युग के प्रतिनिधि साहित्यिक निबंधकारों की प्रवृत्तियों की मीमांसा के पश्चात् भी उस युग के एक विशिष्ट साहित्यिक निबंधकार से दृष्टि नहीं फेरी जा सकती। यहाँ अभिप्राय श्रीबदरीनारायण चौधरी प्रेमघन' से है। उस युग के ये भी ऐसे साहित्यकारों में थे जिनकी दृष्टि साहित्य के सभी अंगों पर गई थी। निबंध भी इन्होंने अनेक प्रस्तुत किए। इनके निबंधों पर विचार करते हुए स्मरण रखने की बात यह है कि इन्होंने सामाजिक निबंधों की रचना ही अधिक की है। परंतु चाहे किसी भी प्रकार के निबंध प्रस्तुत किए हों, सभी में साहित्यिकता की पूरी छाप है। ये साहित्य-रंग में रँगे व्यक्ति थे भी। साहित्य की झलक इनके व्यावहारिक जीवन में भी मिलती थी। इनकी साहित्यिकता के विषय में कहना यह है कि वह प्रायः चमत्कारवादी ढंग की थी; जो सामाजिक निबंधों में कम और साहित्यिक निबंधों में अधिक दिखाई पड़ती है। भाषा में सानुप्रासिक लच्छेदार पदावली, तुकदार वाक्यों और वाक्यखंडों का प्रयोग उनकी चमत्कारवादिता का द्योतक नहीं, तो क्या है? और, यह चमत्कारवादिता न्यूनाधिक रूप में उनके दोनों श्रेणी के निबंधों में मिलती है। इस प्रकार हमें विदित यह होता है कि साहित्यगत कला-पक्ष की ओर इनकी दृष्टि अधिक रहती थी। इनके कला-पक्ष का प्रभाव इनके भाई श्रीहरिश्चंद्र उपाध्याय पर भी पड़ा, इसकी चर्चा हो चुकी है। परंतु इनकी कलागत चमत्कारवादिता में अवसरानुकूलता नहीं है। चमत्कार दिखाने की झक इन्हें सवार रहती थी। इनके सामाजिक निबंधों में यह देखा जा सकता है। हाँ, साहित्यिक निबंधों में इसका आधिक्य अवश्य है, और इसके लिए यह उपयुक्त स्थान भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस साहित्यकार की प्रवृत्ति कला-पक्ष की ओर विशेष होगी उसकी रचना में वर्णनात्मकता का प्राधान्य भी होगा। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के निबंधों में वर्णनात्मकता की अधिकता मिलती है। इनके सामाजिक निबंधों में भी यह यत्र-तत्र विद्यमान है। इसी कारण इनके साहित्यिक निबंधों में वर्णनात्मक निबंध ही अधिक हैं। जैसे, 'परिपूर्ण पावस',※ 'गंगासागर संगम यात्रा' × आदि। प्रथम निबंध में पावस-

---

※ आनंद कादंबिनी, खंड १, संख्या २, संवत् १९३८ वि०

× वही, खंड ६, संख्या ११-१२, संवत् १९६३ वि०

ऋतु के प्राकृतिक रूप, रास-रंग, आमोद-प्रमोद आदि का वर्णन है। एक उदाहरण देखें—

सत्य है। वे क्योंकर जी सकें जब कि ऐसा प्रबल शत्रु अर्थात् महाराज पावस वीरेश कि जिसकी सहायता के बिना काम बेकाम सा रह सकाम कृपा कटाक्ष की कामना करता है अपने समस्त साज समाज को साज आज आया; देखो यह गरज के मिस तोपें छूटने लगीं, कि आकाश धूम स्याम घन सघन से घिर समस्त संसार को अंधकारमय बना दिया; इंद्रधनु रूपी धनुष से बूँदियों के बाणों की वर्षा होने लगी, बकावलि सैन समूह के सग देखो यह बिजली के पटा को फिराता कौन चला आता, क्या यह सावन सेनापति है? अवश्य! देखो यह दादुर नकीब बोलते हैं।

रूपक बाँधने की प्रवृत्ति का आधिक्य इस उदाहरण से देखा जा सकता है।

द्वितीय निबध भी वर्णनात्मक ही है, यद्यपि इसमे वर्णन की कमी और विवरण का ही आधिक्य है। जैसे, जहाज के कष्टों का विवरण आदि। इसमे जहाज तथा सरकार की अव्यवस्था पर टीका-टिप्पणी भी है।

इन्होंने साहित्य और भाषा संबंधी विषयो पर भी निबंध लिखे है। जैसे, 'नागरी समाचार पत्र और उनके सपादकों का समाज'* आदि निबध। इस निबंध मे हिंदी के समाचार पत्रों की अव्यवस्था की चर्चा की गई है। ऐसा करते हुए 'भारत-मित्र' तथा 'सरस्वती' के झगड़े का ही विशेष रूप से उल्लेख है।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ऐसे निबध जिनमें वर्णनात्मकता की कमी है वा वह नहीं है उनमे लोकोक्तियो तथा मुहावरो का प्रयोग अच्छा हुआ है। जैसे, 'थोर तो लिखेन तुलसीदास, अधिक गाए भगतन', आदि में।

---

* वही, माला ६, मेघ ५, सवत् १९६३ वि०

६

शैली

भारतेंदु-युग के निबधों की मीमासा करते हुए उसकी गद्य-शैली पर दो चार शब्द कहे गए हैं—विशेषतः उस युग के निबंधकारों पर व्यष्टितः विचार करते हुए। परतु गद्य निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण भारतेंदु-युग की गद्य शैली पर उतना ही तो अलम् नहीं है। भारतेंदु-युग ने जैसे नवीन गद्य की आधार-भूमि स्थापित की वैसे ही उसने गद्य-शैली का भी नवीन रीति से निर्माण करने का श्रीगणेश किया, जिसकी प्रेरणा और आधार पर आगे की गद्य-शैली उत्तरोत्तर विकसित होती गई। कहना न होगा कि जिस प्रकार भारतेंदु-युग का गद्य आरंभिक अवस्था मे था उसी प्रकार उस युग की गद्य-शैली भी आरंभिक अवस्था में ही थी। कारण कि भाषा और शैली का घनिष्ठ संबध है।

जैसे भाषा भावों और विचारों की वाहिका है वैसे ही शैली की भी वाहिका है, क्योंकि शैली भाषा के रूप मे ही हमारे संमुख आती है, जहाँ भाषा नहीं वहाँ शैली नहीं। इस प्रकार भाषा वह सामान्य तत्त्व स्थापित होती है, जिसका संबंध भाव और विचार से भी है और शैली से भी। भाव और विचार तथा शैली के बीच का वा मध्यग तत्त्व भी इसे स्वीकृत किया जा सकता है। वह इस प्रकार कि भाव और विचार भाषा से होकर तब शैली के रूप में सस्थित होते है। पहले भाव और विचार उदित होते हैं, तब उसके अनुकूल भाषा बनती है, और तब भाषा की काया मे शैली की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। इस प्रकार भाव और विचार, भाषा तथा शैली अन्योन्याश्रित हैं।

भाव और विचार तथा भाषा का संबध स्पष्ट है। प्रकृति द्वारा मानव को वाणी का वरदान भाव और विचार की अभिव्यक्ति के लिए ही मिला। यदि ऐसा न हुआ होता तो मानव की वैसी ही अवस्था होती जैसी युद्ध की सारी साज-सज्जा से युक्त उस सैनिक की होती है जो संमोहन मंत्र द्वारा मोहित कर दिया जाता है, जो अस्त्र-शस्त्र रहते हुए भी नहीं लड पाता। मानव अपने सारे

भावों और विचारो को लिए छटपटाया करता। अक्षि-निकोच और पाणि-विहार से वह अपने कितने भाव और विचार व्यक्त करता ?* और इन्हे कितनी स्पष्टता-पूर्वक व्यक्त कर पाता ? मान लीजिए कि वह ऐसा कर भी लेता तो क्या इससे साहित्य का निर्माण होता ? भाव और विचार तथा भाषा के संबंध का यह तो एक व्यावहारिक पक्ष हुआ। इनके संबध का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष भी है। वह यह कि भाषा भाव और विचार की प्रबल प्रेरणा का फल है। भाव और विचार जब इतने प्रबल, गंभीर और तीव्र हो जाते है कि उनको व्यक्त किए बिना हृदय और बुद्धि को कल नहीं मिलता तब भाषा का निर्माण होता है। साहित्य के निर्माण का मूल भी भावों और विचारो की यह प्रबल, गभीर और तीव्र प्रेरणा ही है। यहाँ उनकी बात नहीं की जा रही है जिनके पास आत्माभिव्यक्ति का आंगिक और शाब्दिक साधन नहीं है अथवा जो ऋषि मुनि की कोटि के है और अपने भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त होने से रोकने की क्षमता रखते हैं।

भावों और विचारों की वाहिका भाषा की अभिव्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया पर भारत के प्राचीन भाषाशास्त्रियो तथा वैयाकरणों की दृष्टि भी गई थी। भाषा का चरमावयव वाक्य माना जाता है, परंतु वाक्य को वर्णों के समूह शब्दो के समुदाय के अतिरिक्त और कुछ नही कहा जा सकता है। पाणिनि मुनि ने भाषा के मूल तत्त्व वर्ण की उत्पत्ति की मानसिक प्रक्रिया का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि आत्मा अपने मे स्थित अर्थों को बुद्धि के आश्रय से मन के पास ले जाकर उसे (मन को) उन्हे व्यक्त करने की ओर लगाती है। इतना होने पर मन शरीर की अग्नि पर चोट करता है और यह अग्नि वायु को प्रेरित करती है। वायु उठ कर मूर्धा की ओर जाती है, उस पर टक्कर लगने पर जब वह लौटती है तब वही मुख मे आकर वर्णों को उत्पन्न करती है।† वर्णोच्चारण की इस मानसिक प्रक्रिया पर संदेह करने की गुंजायश नहीं प्रतीत होती। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा निराकार भावों और विचारो की साकार कल्पना है। भाषा साकार तो न हो पाती यदि मानव द्वारा लिपि-निर्माण न हुआ होता।

भावो और विचारों तथा भाषा के संबध का एक रूप यह भी है कि भाषा भावों और विचारों की अनुगामिनी है। भाव और विचार जैसे होगे भाषा भी

---

* अन्तरेण खल्वपि शब्दप्रयोगं बहवोऽर्था गम्यते अक्षिनिकोचै: पाणिविहारैश्च। महाभाष्य, २।१।१।

† आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः वर्णाञ्जनयते। पाणिनि शिक्षा ६ और ९।

वैसी ही होगी। भावों और विचारों की गंभीरता और हलकापन, उनकी तीव्रता और शिथिलता, उनकी मधुरता और रूक्षता आदि के अनुकूल ही भाषा भी अपने विभिन्न रूप धारण करती है। स्मरण रखने की बात यह है कि यहाँ बात उन्हीं लेखकों की की जा रही है जो समर्थ हैं, जो अपने भावों और विचारों को सफलतापूर्वक समर्थ और अनुकूल वाणी मे व्यक्त कर लेते है। एक बात और है। हम चर्चा साहित्य की कर रहे है, जिसमे अपने भावों और विचार को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्यिक रुख अवश्य ही अख्तियार करना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे भाषा में भी साहित्यपन आना अनिवार्य है। साहित्य-निर्माण के लिए साहित्यिक भाषा का होना आवश्यक है।

भावों और विचारो तथा भाषा के संबध का दूसरा रूप यह है कि हृदय और बुद्धि मे भाव और विचार जिस रूप मे उठते है भाषा में अभिव्यक्त होकर वे उसे भी अपने उठने की गति के अनुसार ही गति दे देते है। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की सचाई भी यही है कि वे हृदय और बुद्धि में जैसे रूप धारण करें भाषा द्वारा भी वैसे ही रूप में व्यक्त कर दिए जायँ। भावों और विचारों तथा भाषा के सबंध की स्वाभाविकता भी इसी प्रकार कायम रह सकती है। भाव और विचार उठें तो दूसरे रूप मे और उन्हें व्यक्त किया जाय दूसरा रूप देकर, ऐसी स्थिति में भाषा में तो बनावटीपन आएगा ही भावों और विचारों की भी सम्यक् परिस्थिति का बोध न हो सकेगा; और इसका प्रभाव शैली पर भी बुरा पड़ेगा। शैली भावों और विचारों की दृष्टि से अयथार्थ हो जायगी। हम कहना यह चाहते है कि भाषा मे गति की स्थिति के कारण भाव और विचार ही है। भाषागत वाक्यों की बनावट, उनका छोटा-बडा होना, उनमें प्रवाह की स्थिति, उनका आरोह-अवरोह आदि तत्त्वों का सनिवेश भावों और विचारों के हृदय और बुद्धि मे उठने की क्रिया के प्रभाव और प्रेरणा के कारण ही होता है। भाव और विचार जिस रूप में उठेंगे वाक्य भी उसी के अनुकूल होंगे। भावों और विचारों की गभीरता के कारण भाषा की मद गति, उनकी भावुकता और प्रबलता के कारण उसकी तेज गति, उनकी काव्यात्मकता के कारण उसकी मथर गति आदि का होना स्पष्ट ही है।

भाव और विचार तथा भाषा के घनिष्ठ तथा स्वाभाविक सबंध की इस मीमासा के साथ ही इन पर विचार के एक और पक्ष से विमुख नहीं हुआ जा सकता और वह पक्ष है लेखक वा शैलीकार का। कहा जा चुका है कि लेखक में इस सामर्थ्य का होना आवश्यक है कि वह अपने भावों और विचारों को सफलतापूर्वक भाषा द्वारा व्यक्त कर सके। यदि वह ऐसा न कर सकेगा तो

लेखक कहा भी कैसे जायगा। उसमे इस शक्ति का होना तो आवश्यक ही है। इसके अतिरिक्त किसी लेखक की भाषा सबधी शास्त्रीय जानकारी और योग्यता का प्रभाव भी उसकी अपनी भाषा पर पडता है। उसकी इस योग्यता द्वारा उसे अपनी भाषा के शृंगार में सहायता मिलती है; और, हम देख चुके है कि साहित्य-निर्माण के लिए भाषा मे साहित्यपन का होना आवश्यक है। अभिप्राय यह कि भाषा मे शृगार के तत्त्वों का सनिवेश लेखक की भाषागत जानकारी तथा योग्यता पर ही निर्भर है। भाषा मे अलकारो की योजना, उसमें भाषा की शक्तियों—विशेषत: लक्षणा, व्यजना—की सनिहिति, उसमे मुहावरो तथा लोकोक्तियों का प्रयोग आदि लेखक की पटुता की अपेक्षा रखते है।

भाव और विचार को यदि शैली की आत्मा मान लें और भाषा को उसका शरीर तो शैली का सपूर्ण अग इस विवेचन से हमारे संमुख आ जाता है। वस्तुतः शैली मे भाव और विचार तथा भाषा के तत्त्वों के अतिरिक्त और है भी क्या। भाव और विचार तो शैली की आत्मा है ही, ये ही तो इसके अंतरग है। परतु इसके बाह्याग भाषा का भी कम महत्त्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि आत्माभिव्यक्ति के लिए, उसे रूप-रग देने के लिए शरीर की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। यदि शरीर ही न रहेगा तो आत्मा रहेगी कहाँ, यही तो उसका आधार है। जैसे बिना भाव और विचार के शैली का निर्माण नहीं हो सकता वैसे ही बिना भाषा के भी उसका कोई आकार नहीं खड़ा किया जा सकता। भाव और विचार की निराकार शैली भाषा द्वारा साकार रूप धारण करती है। इस प्रकार शैली की मीमासा मे भाव और विचार तथा भाषा का महत्त्व सम है। यदि विचार किया जाय तो भाषा का पलडा भाव और विचार के बराबर नहीं, कुछ भारी ही दिखाई पड़ेगा। कारण यह है कि भाव और विचार की विपुलता होने पर भी समर्थ भाषा के न रहने के कारण शैली का सुष्ठु निर्माण नहीं हो सकता है। परतु यह भी कहा जा सकता है कि सुलझे और परिमार्जित भाव और विचार के अभाव में भी शैली समृद्ध नहीं बन सकती। इस प्रकार शैली के अंतर्गत भाव और विचार तथा भाषा दोनों का महत्त्व किसी से कम नहीं ठहराया जा सकता।

भाव और विचार शैली की आत्मा हैं और भाषा उसका शरीर है। शैली की आत्मा तथा उसके शरीर दोनों पर हम विचार कर चुके है। इनके पारस्परिक संबंध की चर्चा भी की जा चुकी है। शैली के बाह्यातर रूप का निर्माण इन्हीं से होता है। अतः शैली की मीमासा भाव और विचार तथा भाषा की मीमासा ही है, और, इन्हें हम देख चुके हैं। वस्तुतः शैली भाषा की काया में

भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति है और ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमे हृदय और बुद्धि से उद्भूत भाव तथा विचार उसी रूप में स्थित रहते है जिस रूप तथा क्रम से वे उनमे (हृदय और बुद्धि से) उदित होते है। कहना न होगा कि भावों और विचारों का उदय एक क्रिया है और इस क्रिया मे भी व्यवस्था है, क्योंकि एक समय एक ही भाव वा विचार उठते है। ऐसी स्थिति मे किसी रचना में एक के पश्चात् उठे दूसरे भावों तथा विचारों की पूर्वापरिक लड़ी होती है। अतः भाषा की काया मे जब भाव और विचार अभिव्यक्त होने लगते हैं तब उस (भाषा) मे भी उनकी यह तारतमिक तथा व्यवस्थित लडी रहती है, क्योंकि भाव तथा विचार उसी रूप मे अभिव्यक्त होते है जिस रूप में वे हृदय तथा बुद्धि से उठते है। इस विवेचन का तात्पर्य यह कि शैली भावों तथा विचारों की भाषागत अभिव्यक्ति तो है ही उसमे तारतम्य तथा व्यवस्था भी होती है, अर्थात् वह वही ढग, प्रणाली वा पद्धति ग्रहण करती है जो ढग भाव तथा विचार अपने उदय-स्थल में ग्रहण करते है। इस प्रकार निश्चित यह होता है कि शैली अभिव्यक्ति की पद्धति, प्रणाली वा उसके ढंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह 'रीति' ही है।

साहित्यकार का एकात लक्ष्य होता है श्रोता, पाठक वा दर्शक को प्रभावित करना। शैलीकार भी इस लक्ष्य से विमुख नहीं रह सकता। वह भी तो साहित्यकार ही है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए शैलीकार की वृत्ति अपनी शैली के शृगार की ओर भी अवश्य जाती है। ध्यान देने की बात यह है कि शैली के शृगार का तात्पर्य है मुख्यतः उसके बहिरग भाषा का शृगार, और भाषा के शृगार का तात्पर्य है उसमे स्थित शब्द से लेकर वाक्य तक की प्रभावोत्पादक सस्थिति। लोकोक्ति मुहावरे आदि का प्रयोग भी भाषा के शृगार के लिए ही होता है। शैली के बहिरंग भाषा पर विचार करते हुए हम इन सभी तत्त्वों की ओर ध्यान आकर्षित कर चुके हैं।

शैली मे प्रभावात्मकता की संस्थिति के विषय की विवेचना करते समय एक और बात भी विचारणीय है। इसमे तो संदेह नहीं कि शैली की आत्मा का प्रकाश उसके शरीर द्वारा अवश्य होगा। अभिप्राय यह कि हृदय और बुद्धि में भाव और विचार जिस रूप में उठेगे शैली में उनकी अभिव्यक्ति उसी रूप में होगी। शैली का यथार्थ वस्तुतः यही है। अब स्मरण रखने की बात यह है कि शैलीकार का लक्ष्य प्रभाव डालना होता है। अतः हृदय और बुद्धि से भाव और विचार उठने वा उठाने के साथ ही उन्हे तुरत अभिव्यक्त करने की प्रेरणा के कारण इनके मूल में ही वह इन्हें प्रभावोत्पादक रूप देने की ओर प्रवृत्त रहता है। अर्थात् वह इन्हें प्रभावोत्पादक रूप में ही अपने हृदय वा बुद्धि में

उठाता है। भावो तथा विचारों को वह हृदय तथा बुद्धि से ऐसे गतियुक्त वाक्यों मे उठाता है कि वे अभिव्यक्त होकर प्रभाव डालें। प्रभावोत्पादकता के अन्य साधन भाषा के शृंगार-तत्त्व की ओर भी उसकी दृष्टि भावों तथा विचारों के उदय के मूल मे ही जाती है। स्मरण रखने की बात यह है कि यहाँ उन लोगों की चर्चा नहीं की जा रही है जो अपनी भाषा वा शैली को हजार बार खराद कर तब अपने भाव तथा विचार व्यक्त करते है, जिसके कारण वे प्रायः अयथार्थ शैली को रूप देते है। स्मरण इसे भी रखना है कि भावो तथा विचारो को उनके मूल मे ही उन्हे प्रभावोत्पादक बनाना अभ्याससापेक्ष्य अवश्य है। कोई दो दिनो मे शैलीकार बनता भी तो नहीं। इस विवेचन का निष्कर्ष यह कि शैली को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उसके शरीर के शृंगार पर ही दृष्टि रखने की आवश्यकता नही है उसकी आत्मा के शृंगार की भी आवश्यकता है, जिसका प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है।

शैली पर शैलीकार की वा उसके व्यक्तित्व की पूरी छाप रहती है, इस पर भारतीयो की दृष्टि विलायती लोगो के चेताने से ही नहीं गई। वे स्वतः इससे परिचित है। उनके साहित्यकारो वा शैलीकारो के साहित्य वा उनकी शैली मे व्यक्तित्व की पूरी छाप है। पंडितराज जगन्नाथ का अक्खडपन उनके 'रसगंगाधर' की शैली मे स्पष्टतः प्रतिबिंबित है विशेपतः वहाँ जहाँ अप्पय दीक्षित सामने आ गए हैं। इसी प्रकार भारतेंदु-युग के सभी निबंधकारो मे उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप लक्षित होती है। वस्तु स्थति तो यह है कि शैली पर शैलीकार की छाप पडने का सत्य इतना स्वाभाविक है कि उसमे किसी भी प्रकार का व्यवधान पड ही नही सकता। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को हम दो रूपो में देखते है। व्यक्तित्व का एक रूप स्वाभाविक होता है और दूसरा अर्जित। व्यक्तित्व के स्वाभाविक रूप से तात्पर्य उसमे प्रकृतिप्रदत्त वृत्तियों, मनोभावो, स्वभावों आदि से है। व्यक्तित्व के अर्जित रूप से तात्पर्य व्यक्ति के अध्ययन, मनन आदि द्वारा अर्जित ज्ञान के फल से है। किसी शैलीकार की शैली पर उसके इन दोनो व्यक्तित्वों का प्रभाव पड़ता है। शैली पर उसके प्राकृतिक मनोभावो, स्वभावो, वृत्तियों आदि की भी छाप पडती है और उसके अध्ययन-मनन आदि द्वारा अर्जित ज्ञान की छाप भी। इन दोनो व्यक्तित्वो मे से जिस व्यक्तित्व का प्राबल्य होता है शैली पर उसी की उभार अधिक लक्षित होती है। श्रीप्रताप-नारायण मिश्र के स्वभाव वा वृत्ति को छाप उनकी शैली पर विशेष लक्षित होती है। उनके अध्ययन-मनन की छाप उस पर विशेष नहीं उभर सकी; कारण कि व्यक्तित्व के इस रूप की उनमे प्रबलता थी। इसके ठीक विपरीत

श्रीबालकृष्ण भट्ट की शैली पर उनके अध्ययन-मनन की छाप, उनके अध्ययन-मनन की प्रबलता के कारण, विशेष है। शैली और व्यक्तित्व पर विचार के साथ ही इसे भी ध्यान मे रखना चाहिए कि शैलीकार के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ उसकी शैली भी विकसित होती जाती है। यहीं इसका भी निर्देश कर दें कि शैली पर व्यक्तित्व की छाप तो पड़ती ही है, वह विषयानुकूल भी चलती है, अर्थात् विषय का प्रभाव भी शैली पर पडता है। जैसे, विषय के गभीर होने के कारण शैली भी अवश्य ही गभीर होगी।

शैली पर शैलीकार के व्यक्तित्व की छाप पडती है, और शैलीकार के विकास के साथ ही उसकी शैली का भी विकास होता है, ये तो शैली को प्रभावित करनेवाले व्यष्टि पक्ष है। शैली को प्रभावित करनेवाले समष्टि पक्ष भी है, अर्थात् समष्टि की छाप भी शैली पर पड़ती है। इस विषय पर विचार के प्रधानतः दो रूप समुख आते है। एक तो यह कि किसी व्यक्ति वा किसी युग की शैली पर उसके पूर्व की शैलियो का प्रभाव और दूसरा यह कि शैली पर समाज वा देश-काल का प्रभाव। किसी व्यक्ति वा किसी युग की शैली पर उसके पूर्व की शैलियों के प्रभाव की चर्चा चलाने पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कोई शैलीकार अपने से पहले की शैलियो से बिलकुल नवीन शैली का निर्माण भी कर सकता है ? ऐसी परिस्थिति मे इसे कैसे स्वीकार किया जाय ? यह तो सत्य है कि किसी व्यक्ति वा युग की शैली में अपनापन अवश्य होता है। यह अपनापन ही उसे विशिष्ट रूप प्रदान करता है। यह बात तो ठीक है। परतु यह भो सत्य है कि इस विशिष्टता वा अपनेपन को लाने म वह पूर्व की शैलियो से प्रभावित अवश्य रहता है। उसका विकास पूर्व का शैलिया क आधार पर अवश्य होता है। पूर्व की शैलियाँ जैसी होंगी उसक विकास म भी उसी के अनुसार विशिष्टता आयेगी। निष्कर्ष यह कि शैली के विकास मे पूर्व की शैलियाँ ही प्रधान कार्य करती है। उन्हीं की भित्ति पर उसके विकास का निर्माण होता है। अचानक किसी ऐसी शैली का निर्माण, जिसमे अपने पूर्व की शैलिया की अपेक्षा आश्चर्य-जनक विशिष्टता आ जाय और पूर्व की शैलियो से उसका कोई सबध न हो, विरल ही देखा जाता है। और, यदि ऐसा होता भी है तो उसके लिए अनेक कारण विद्यमान रहते है। भारतेंदु युग वा उस युग के निबधकारों की शैलियों में विकास की निहिति अवश्य हुई, उसमे विशिष्टता अवश्य आई. परंतु पूर्व की शैलियों का प्रभाव और उसके विकास में पूर्व की शैलियों का आधार अवश्य रहा। यहाँ स्मरण रखने की एक बात यह भी है कि किसी व्यक्ति वा युग की शैली पर उसके पर्व की शैलियों के बहिरंग का प्रभाव प्रधान रूप से पड़ता है।

शैली पर समाज वा देश-काल का भी प्रभाव पडता है, उसी प्रकार जिस प्रकार साहित्य पर उनका प्रभाव पडता है। किसी भी युग की शैली से इस तथ्य का उदाहरण उपस्थित किया जा सकता है। भारतेंदु-युग की वा उस युग के निबधकारो की ही शैली ले लें। भारतेंदु युग के निबंधकारों की शैली की प्रधान विशेषता है उनमे हास्य-व्यग्य तथा विनोद की सनिहिति। यह सत्य है कि इस प्रकार की शैली के निर्माण मे उस युग के निबधकारों के व्यक्तित्व का भी प्रभाव था; परतु इस प्रकार की शैली के निर्माण मे उन्हे प्रभूत प्रेरणा और उचित आलबन मिले समाज से ही। उस युग के निबंधकारों ने उपर्युक्त शैली का उपयोग प्रधानतः रूढिवादियों पर चोट करने के लिए किया है, जो नवीन तथा समाजोपयोगी विचारो तथा सुझावो पर ध्यान नहीं देते थे, जो समाज के हित पर दृष्टि रख कर नहीं चलना चाहते थे, लकीर के फकीर ही बने रहना चाहते थे। ऐसे लोगो के प्रति उपर्युक्त शैली का उपयोग कर उन्हे सीधे मार्ग पर लाना उस युग के निबधकारों का ध्येय था। अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा मे ही गर्क हो अपनी भारतीयता को छोड़ नकली अँगरेज बने बाबुओ की खबर भी हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली द्वारा उस युग के निबधकारो ने ली है। कहना न होगा कि उस युग मे समाज का एक अग ऐसी नकलची प्रवृत्ति धारण करनेवला अवश्य था। इसी प्रकार भारतेदु युग वा उसके आगे भी वाद-विवाद की जो तीखी शैली चली उस पर उस युग मे 'आर्यसमाज' के प्रभूत प्रचार के कारण उसकी कट्टरता तथा रूखापन का भी काफी प्रभाव दिखाई पडता है। भारतेंदु-युग के सामाजिक निबधकारों मे व्याख्यानात्मक शैली की नियोजना इसी कारण है कि वे प्रभाव डाल कर उस युग की जनता को समाज-सुधार की ओर अग्रसर करना चाहते थे। ऐसे ही अनेक उदाहरण है। अभिप्राय यह है कि शैली पर समाज वा देश-काल का प्रभाव भी पड़ता है।

७

निबंध-शैली

भारतेंदु-युग के पूर्व निबंधों की रचना अति विरल थी, इसे हम जानते हैं। ऐसी परिस्थिति में शैली की अनेकरूपता की स्थापना भी असंभव थी। भारतेंदु युग में निबंधों की रचना का जो कारण हम देख चुके हैं वह इस युग के पूर्व विद्यमान न था। उस समय में विचारों के आदान-प्रदान की सामाजिक आवश्यकता उतनी तीव्र न थी जितनी कि भारतेंदु-युग में थी; और इस सामाजिक आवश्यकता की तीव्रता का प्रधान कारण था अपरिचित विदेशी सभ्यता का भारतीयों पर आक्रमण। इस प्रकार की सामाजिक परिस्थिति के कारण विषय की अनेकरूपता भी आई, जो इस युग के पूर्व न थी। उस समय केवल धार्मिक विषयों का प्राधान्य था। एक तो निबंध-रचना की विरलता दूसरे विषय की एकांगिता के कारण भारतेंदु युग के पूर्व शैली की अनेकरूपता के दर्शन भी नहीं हो सके। इस युग के पूर्व भाषा की अप्रौढ़ता भी शैली में अनेकरूपता लाने में बाधक हुई।

शैली और भाषा के संबंध की घनिष्ठता हम देख चुके हैं। भारतेंदु-युग में शैली निर्माण के आरंभ का प्रधान कारण है उस युग में विशुद्ध, परिमार्जित तथा समर्थ भाषा की स्थापना। जब भाव और विचार का वाहन ही समर्थ न होगा तो शैली का निर्माण भी कैसे हो सकता है। भारतेंदु-युग के पूर्व भाषा की प्रधान त्रुटियाँ थीं उसमें पंडिताऊपन, ब्रजभाषापन तथा पूरबीपन की सन्निहिति। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र तथा उनके सहयोगियों द्वारा इन 'पनों' के निवारण का प्रयत्न हुआ और इस कार्य में उन्हें प्रभूत सफलता भी मिली। इन लोगों ने हिंदी-गद्य की भाषा को नवीन रूप दिया; वह रूप जिससे हिंदी के आधुनिक गद्य का आरंभ होता है। इस प्रकार के हिंदी-गद्य की स्थापना के भारतेंदु, श्रीहरिश्चंद्र नेता थे, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार शैली-निर्माण के लिए भारतेंदु-युग में समर्थ भाषा की प्रतिष्ठा हुई। इसके साथ ही सामाजिक परि-

स्थितिवश विचारो के आदान-प्रदान के लिए अवसर के कारण अनेक सामाजिक तथा साहित्यिक विषय भी उस युग के निबंधकारों के सम्मुख आए, जिनको लेकर उन्होने निबंधो की रचना की। सामाजिक तथा साहित्यिक विषयो को लेकर उस युग के निबंधकारो ने निबंध के सभी प्रकारो को रचा। विचारात्मक, भावात्मक, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक, कथात्मक सभी प्रकार के निबंध उस युग मे लिखे गए, इसे हम देख चुके है। निबंधो के विषय की अनेकरूपता तथा उन विषयो को अभिव्यक्त करने के प्रकारो मे विविधता के कारण भारतेंदु युग की शैली मे भी अनेकरूपता आई। विचार-प्रधान, भावप्रधान वा काव्यात्मक, वर्णनप्रधान—इसमे भी काव्यात्मकता की पूरी छाप रहती है—शैलियो के निर्माण का आरंभ उस युग मे हुआ। इन शैलियो के साथ चुलबुली और चटपटी शैली, कथा कहने की शैली, हास्य-व्यंग्य और विनोद की शैली, प्रभावात्मकता के लिए व्याख्यानात्मक शैली आदि अनेक शैलियो की स्थापना भारतेंदु युग में हुई। शैलीगत इस प्रकार की विविधता भारतेंदु युग के पूर्व न थी। इस प्रकार हम देखते है कि शैली के आत्मपक्ष की अभिव्यक्ति का सुष्ठु रूप उस युग मे स्थापित होना आरंभ हो गया था। इस कार्य मे सफलता भी शैलीकारो को मिल रही थी, जिसका मानदंड यह है कि उनकी शैली मे अच्छी प्रभावात्मकता है। वे जिस भाव वा विचार को श्रोता वा पाठक तक पहुँचाना चाहते थे, सरलतापूर्वक पहुँचा देते थे और इस रूप मे पहुँचाते थे कि वह (श्रोता वा पाठक) उसे ग्रहण कर प्रभावित होता था।

भारतेंदु युग मे निबंधकारों का एक समूह ऐसा था जो अपने भावो और विचारो को अभिव्यक्त करनेवाली भाषा पर विशेष दृष्टि रखता था, इन लोगों की दृष्टि शैली के शरीर पर विशेष रहती थी, जिसका संबंध कला-पक्ष से है। ऐसे लोगो की प्रवृत्ति कुछ चमत्कारवाद की ओर थी भी। इस समूह के नेता थे श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'। इन लोगो की भाषा प्रायः सानुप्रासिक होती थी। ये भाषा में प्रायः तुकदार वाक्य, वाक्यखंड और शब्द लाते थे। ऐसा करते हुए इन लोगो की दृष्टि कभी कभी उपयुक्त प्रसंग पर नही रहती थी। कोरे चमत्कार के लिए ये ऐसा करते थे। यहाँ एक बात यह कहनी है कि निबंधकारों का यह संप्रदाय ही नहीं, प्रत्युत भारतेंदु युग के प्रायः सभी निबंधकार तुकदार वाक्य और वाक्यखंड लिखने की ओर प्रवृत्त दिखाई पडते है। विचार करने पर विदित होता है कि भाषागत इस प्रवृत्ति का मूल भारतेंदु-युग के पूर्व के लेखको की रचनाएँ है। श्रीइंशाअल्ला खाँ तथा श्रीसदल मिश्र की भाषा में इस प्रकार की प्रवृत्ति स्पष्टतः लक्षित होती है।

भारतेंदु-युग के निबंधकारो की शैली में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। सच तो यह है कि लोकोक्तियों तथा मुहावरों का जितना अधिक और सुष्ठु प्रयोग इस युग मे दिखाई पडा उतना और किसी भी युग में नहीं। इस युग के बाद तो इन पर लोगो की दृष्टि ही धीरे-धीरे कम जाने लगी और वर्तमान युग मे तो इनका एक प्रकार से अभाव ही है। इस युग के प्रायः सभी निबंधकार लोकोक्तियो का प्रयोग करते थे। हिंदी की लोकोक्तियो के अतिरिक्त फारसी की लोकोक्तियों का प्रयोग भी ये लोग यदाकदा करते थे। मुहावरों के विषय मे भी ऐसी ही बात है। मुहावरेदानी की ओर श्रीप्रतापनारायण मिश्र तथा श्रीबालकृष्ण भट्ट की दृष्टि विशेष जाती थी।

भारतेंदु-युग के निबंधकारो की शैली मे उद्धरणो का प्रयोग भी भली प्रकार मिलता है। प्रायः सभी निबंधकार इनका प्रयोग करते थे। उद्धरण प्रायः सभी भाषाओं के होते थे। जैसे, संस्कृत हिंदी, फारसी, अरबी और ॲगरेजी। फारसी, अरबी और ॲगरेजी के उद्धरणो की तो कमी दिखाई पडती है, परतु संस्कृत तथा हिंदी के उद्धरणो का अधिक उपयोग होता था। श्रीबालकृष्ण भट्ट का दृष्टि संस्कृत के उद्धरणों की ओर विशेष थी।

भारतेंदु युग के निबंधकारों की भाषा मे उनके संस्कृत के अध्ययन-मनन के प्रभाव के कारण संस्कृत के कुछ बने-बनाए रूपों का प्रयोग भी अधिक मिलता है। जैसे, अततोगत्वा, येन केन प्रकारेण, प्रसगात् आदि। इनका प्रयोग हिंदी में एक प्रकार से अव्यय रूप मे हो रहा है, ये अपना रूप नहीं बदलते, ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते है।

भारतेंदु-युग के निबंधों मे प्रयुक्त भाषा के विषय मे कहना यह है कि यद्यपि उस युग मे लोगों की दृष्टि संस्कृत तथा हिंदी के शब्दों के प्रयोग की ओर विशेष था तथापि फारसी तथा अरबी के शब्दों को न प्रयोग करने का आग्रह भी उनमे नहीं था। वे यथाप्रसग सभी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे। यह तो उस युग मे भाषा-प्रयोग का व्यावहारिक पक्ष है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने "लिखने की भाषा" पर सैद्धांतिक दृष्टि से भी विचार किया है। ऐसा करते हुए उन्होने संस्कृतयुक्त फारसीयुक्त, ॲगरेजीयुक्त आदि अनेक प्रकार की भाषाओं के उदाहरणों को उपस्थित करके दो प्रकार की भाषाओं को लिखने की अनुमति' दी है, जिनमे से एक मे तो संस्कृत के शब्द थोड़े है और दूसरी 'शुद्ध हिंदी' है —

सब विदेशी लोग घर फिर आए और व्यापारियो ने नौका लादना छोड़ दिया पुल टूट गए बाँध खुल गए पंक से पृथ्वी भर गई पहाड़ी

नदियो ने अपने बल दिखाए बहुत वृक्ष समेत कूल तोड़ गिराए सर्प बिलों के बाहर निकले महा नदियो ने मर्यादा भग कर दी और स्वतंत्रता स्त्रियों की भाँति उमड़ चली।

× × × ×

पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश मे बरसात नहीं होती या किसी मौत के फद मे पड गए कि इधर की सुध ही भूल गए। कहाँ तो वह प्यार की बातैं कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मै कहाँ जाऊँ कैसे करूँ मेरी तो ऐसी कोई मुँह बोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ कुछ इधर उधर की बातों ही से जी बहलाऊँ।*

यद्यपि भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने लिखने की भाषा का यह आदर्श स्थापित किया तथापि उसमें फारसी, अरबी आदि के शब्दो का प्रयोग भी होता ही रहा। यत्र-तत्र अँगरेजी के प्रचलित शब्दो का प्रयोग भी उस युग के निबधकार करते थे।

इसमे कोई सदेह नहीं कि भारतेंदु-युग मे एक नवीन प्रकार के गद्य का निर्माण हुआ और उसमे सभी प्रकार के भावो और विचारो को अभिव्यक्त करने की क्षमता निहित की गई। परतु साथ ही इसे भी नहीं भूल जाना चाहिए कि विकास क्रमिक होता है। परपरा से चली आती हुई प्रवृत्तियों को सहसा त्याग देना सभव नही होता। इसी कारण भारतेंदु-युग के निबधो की शैली मे उस युग के पूर्व के युग की छाप यत्र-तत्र पडी ही है। पडिताऊ, ब्रजके तथा पूरबी प्रयोग, शब्दों के शुद्ध रूप को न रख कर उनके बोलचाल के, देशज वा स्थानीय रूपो को रखना, तात्विक (तात्त्विक), स्मर्ण (स्मरण), दर्श (दरश वा दरस) आदि शब्दों के अशुद्ध वर्ण-विन्यासो की योजना, 'व' के स्थान पर 'ब' का लिखना, मध्य तथा अंत मे 'ए' के स्थान पर 'ऐ' लिखने की प्रवृत्ति तथा ऐसे ही अन्य प्रकार के पुराने तथा दुष्ट प्रयोग भी उस युग की भाषा में यदा-कदा मिलते है। 'किसी पदार्थों मे', 'हर एक आनंदों के लिए', 'सूचना किया जाता' आदि प्रयोग भी उस युग मे मिलते है।

भारतेंदु-युग की शैली के विषय मे अत मे कहना यह है कि उसने नवीन रूप धारण किया अवश्य परतु पुरानेपन से अपना पीछा पूर्णतः न छुड़ा सकी। उसमे नवीनता का प्राधान्य रहा अवश्य।

भारतेंदु युग के प्रतिनिधि निबधकारो की शैलियों के देखने से उस युग की शैली की प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट हो जायँगी।

---

* भारतेंदु श्रीहरिश्चद्रकृत 'हिंदी भाषा', पृ० १२-१५।

इसे देखा जा चुका है कि भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने सामाजिक तथा साहित्यिक दोनों प्रकार के निबंध प्रस्तुत किए हैं। ऐसी स्थिति मे उनके द्वारा अनेक प्रकार की शैलियों का उपयोग स्वाभाविक है और उन्होंने ऐसा किया भी। भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र के सामाजिक निबंधों में वैसे तो यथाप्रसग अनेक प्रकार की शैलियाँ दृष्टिगत होती है, परंतु प्रधानतः उनमे व्याख्यानात्मक शैली तथा हास्य-व्यग्य और विनोद की शैली दिखाई पडती है। इसे तो कहने की आवश्यकता नहीं कि सामाजिक निबधों का लक्ष्य होता है समाज पर प्रभाव डालना। इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रभावात्मकतापूर्ण व्याख्यानात्मक शैली तथा हास्य-व्यग्य और विनोद की शैली, जिसके द्वारा समाज की त्रुटियों की चुटकी ली जा सके और ऐसा करके त्रुटियो के मार्जन के लिए समाज पर प्रभाव डाला जा सके, बहुत ही उपयुक्त होती है। यहीं यह भी कह दें कि हास्य व्यग्य तथा विनोद की शैली का प्रचुर उपयोग उनके साहित्यिक निबंधों मे भी हुआ है। इस प्रकार की शैली का उपयोग करते समय वे इसी के अनुकूल वाक्यावली तथा शब्दों का प्रयोग भी करते थे। 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' मे यह शैली अच्छी बन पडी है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने साहित्यिक निबंध के सभी प्रकारों की रचना की है। अतः उन प्रकारों के अनुकूल अनेक शैलियों का निर्माण भी उनके द्वारा हुआ है। विचार-प्रधान निबधों मे विवेचनात्मक शैली का उपयोग किया गया है; ऐसी शैली का उपयोग जिसमें किसी गंभीर विषय की तह मे पैठ कर उसकी मीमांसा की ओर निबधकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है। इस प्रकार की शैली की भाषा के विषय मे दो शब्द कहने है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने विवेचनात्मक शैली मे दो प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया है। एक तो ऐसी भाषा जिसमें सस्कृत के प्रायः तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे 'नाटकों का इतिहास' में; दूसरे ऐसी भाषा जिसमे सामान्य हिंदी भाषा का प्रयोग है। इस प्रकार की भाषा में बोलचाल में आनेवाले अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग का आधिक्य है। संस्कृत के भी शब्द है, परंतु उतने अधिक नहीं। निबंधकार की दृष्टि सामान्यतः चलती भषा के प्रयोग करने की ओर है। जैसे 'रामायण का समय' की भाषा देखिए—जो कुछ हो, इस बात को लेकर हम इस समय हुज्जत नहीं करते, हम सिर्फ यहाँ वाल्मीकीय रामायण मे से ऐसी थोड़ी सी बातें चुन कर दिखाते हैं जो बहुत से विद्वानो की जानकारी मे आज तक नहीं आई हैं। इसमें हिंदुस्तान की तवारीख, सैर, गुजरान, मुराद आदि शब्दों के प्रयोग भी हैं। कई अन्य स्थलों पर भी भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार विदित होता है कि वे उर्दूबहुला भाषा का प्रयोग भी करते थे।

भावात्मक, चटपटी वा मनोरंजकतापूर्ण तथा वर्णनात्मक शैली का प्रयोग भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र द्वारा हुआ है। भावात्मक शैली की भाषा प्रायः आलंकारिक है—उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं से पूर्ण; जैसे, 'सूर्योदय' शीर्षक निबंध की भाषा। चटपटी शैली की भाषा में प्रसगानुकूल सभी शब्द हैं—संस्कृत के भी, हिंदी के भी, अरबी-फारसी के भी। इस प्रकार की शैली मे भाषा-प्रयोग की यह प्रवृत्ति उचित भी जान पडती है, क्योंकि मनोरंजन ही इस शैली का प्रधान लक्ष्य होता है, जिसमें चाहे किसी भी भाषा के शब्दों के प्रयोग की छूट मिल सकती है। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र के आत्मव्यंजक निबंधों की भाषा भी ऐसी ही है। वर्णनात्मक शैली की भाषा में सामान्य वा प्रचलित हिंदी का प्रयोग भी है और सस्कृतबहुला भाषा का प्रयोग भी।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र द्वारा कथा कहने वा सामान्य विवरण देने की शैली का भी प्रयोग हुआ है। इस शैली में बड़ा प्रभाव है। इसमें सामान्य वा साधारण बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि कथा कहनी होती है। इस शैली मे 'निदान', 'उष्ट्र', 'साधन' आदि शब्दों के साथ ही 'खबरदार', 'दब', 'इशारा' आदि शब्द भी हैं। 'महाकवि कालिदास का चरित्र' तथा 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' की शैली ऐसी ही है।

इस प्रकार विदित होता है कि विषय तथा प्रसग के अनुकूल भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र ने अनेक प्रकार की शैलियों का उपयोग किया है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र की शैली में मुहावरों, लोकोक्तियों तथा उद्धरणों का प्रयोग भी यथाप्रसग मिलता है। परतु उसमें इनका आधिक्य नहीं है। तुकदार वाक्य भी उन्होंने लिखे हैं। परंतु ऐसी प्रवृत्ति उनमे कम लक्षित होती है।

भारतेंदु-युग की शैली की सामान्य प्रवृत्तियों की मीमासा करते हुए कहा जा चुका है कि विकास क्रमिक होता है। अतः पुराने तथा एकदेशीय प्रयोग तथा शब्द उसमें मिलते हैं। भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की शैली के विषय मे भी यही कहा जा सकता है। बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी—रहो वा न रहो, आवो चाहे मत आवौ, प्रवृत्त होय, शतघ्नी को भी यंत्र करके लिखा है। थावला, मोखा, दवात, बुंद, अचरज, बिथा, कमती, घुट्टमघुट्ट, आछत, तुमारे, तिहवार, जेहलखाना। स्मर्ण, दर्श, प्रकर्ण। कबिगण, कबिता, अपूर्ब। रहै, खुलैगा, तुम्हैं। इन्होंने अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है, परंतु जो प्रचलित है उनका ही जैसे, स्टांप, ब्रिटिश, फैशन। इनमें यत्र-तत्र दुष्ट प्रयोग भी मिलते हैं—ईश्वर को अनुग्रह, मीया साहब ने सुनते ही सिर पीटा रोए गाए बिछौने से अलग बैठे सोग माना।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की शैली में कहीं भी उलझन नहीं दिखाई पड़ती। अपने भावों तथा विचारों को वे सरलता और स्पष्टतापूर्वक व्यक्त कर लेते थे। इनकी भाषा को देखने से विदित होता है कि वह नवीन भाषा है—अपने पूर्व युग की अपेक्षा साफ और सुथरी। वाक्यविन्यास प्रभावोत्पादक है। विषय और शैली के अनुकूल ही वाक्यविन्यास भी है। परंतु यत्र-तत्र पुरानापन अवश्य लक्षित होता है।

जहाँ तक शैली के बहिरंग का संबंध है वहाँ तक भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र तथा श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में विशेष अंतर नहीं प्रतीत होता। श्रीप्रतापनारायण मिश्र में भी केवल हिंदी और संस्कृत के शब्दो के प्रयोग का ही आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। वे अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यथाप्रसग करते हैं। कहीं-कहीं अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाषा की ऐसी प्रवृत्ति स्वाभाविक भी है। कारण कि उन्होने प्रायः आत्मव्यंजक निबंध लिखे है, जिनमें मनोरंजकता की संस्थिति आवश्यक है और इस मनोरंजकता के लिए चलती भाषा की अपेक्षा होती है, जिसमे यथाप्रसंग अरबी, फारसी और अँगरेजी के शब्दों के लाने का अवसर भी उपस्थित हो सकता है।

भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की शैली की भाँति ही श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में भी मुहावरों, लोकोक्तियों तथा उद्धरणों का प्रयोग हुआ है। परतु श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली मे इनके प्रयोग की प्रवृत्ति भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की शैली की अपेक्षा अधिक लक्षित होती है। मुहावरों के प्रयोग की ओर इनका ध्यान अधिक रहता है। कुछ निबंध तो मुहावरों का चमत्कार दिखाने के लिए ही लिखे गए जान पड़ते हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग भी इन्होंने खूब किया है—कभी-कभी फारसी की लोकोक्तियों का भी। उद्धरण इन्होंने प्रायः संस्कृत, फारसी, हिंदी और अरबी से लिए हैं, जो प्रायः छोटे होते हैं—दो-दो, एक-एक पंक्ति के।

शैली में चमत्कार की निहिति के लिए तुकदार शब्द, वाक्यखंड तथा वाक्यों का प्रयोग भी इन्होंने किया है, जैसा भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र करते है। पर इस प्रकार के चमत्कार लाने की झक इनमें नहीं लक्षित होती। यत्र-तत्र तथा यथाप्रसग ही इन्होंने ऐसा किया है। शैलीगत इस प्रकार की तुक-योजना प्रयत्नसाध्य भी नहीं जान पड़ती। उसमें स्वाभाविकता तथा प्रवाह है। कुछ उदाहरण देखें—

'सच है! भ्रमोत्पादक भ्रमस्वरूप भगवान के बनाए हुए भव (संसार) में जो कुछ है भ्रम ही है।' 'जहाँ भरम खुल गया वहीं लाख की भलमंसी

खाक मे मिल जाती है।' 'जिसे यह चतुराक्षरी मंत्र न आया उसकी चतुरता पर छार है, विद्या पर धिक्कार है और गुणो पर फटकार है।'

हिंदी मे अव्ययरूप मे चलनेवाले सस्कृत के बने-बनाए रूपों का प्रयोग इन्होंने भी किया है। जैसे, अंततोगत्वा, प्रत्यक्षतया, सर्वभावेन, न्यायेन। अँगरेजी के शब्द भी इनकी भाषा मे मिलते है—नेचर, डिग्री, जैंटिल मैन, लेकचर, डिउटी।

भारतेंदु-युग मे भाववाचक का भारी-भरकम रूप बना लेने की कुछ विशेष प्रवृत्ति लक्षित होती है। जैसे, 'क्रूरता' न लिखकर 'क्रौर्य' लिखना, इसी प्रकार 'मत्सरता' न रखकर 'मात्सर्य' रखना। कभी-कभी 'क्रूरता' की वजन पर 'क्रौर्यता' का अशुद्ध रूप भी बना लिया जाता था। श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति दिखलाई है, जैसे—'धर्मदृढ़ता' को 'धर्मदार्ढ्य' लिखा है। 'प्रबल' से भाववाचक संज्ञा बनाते हुए श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने भी 'प्राबल्य' न रख कर 'प्राबल्यता' रखा है। भाववाचक सज्ञा बनाने की यह प्रवृत्ति बँगला मे अत्यधिक है। इस भाषा मे 'गभीरता' न लिख-बोलकर 'गाभीर्य' ही लिखे-बोलेंगे।

पुराने और एकदेशीय प्रयोग भारतेंदु श्रीहरिश्चद्र की भाँति ही श्रीप्रतापनारायण मिश्र मे भी मिलते है। उदाहरण देखिए—

चाहो ऋषि समझो, चाहो राजा समझो; बीस वर्ष भी नहीं भए। मूड़, गोड़, खुटिहई, हई (है ही), व (और), काहे (क्यो), परलौ (प्रलय), प्रोहित (पुरोहित), रिखियो (ऋषियो) लग, तौ, कहैं।

यत्र-तत्र पूरबी प्रयोग भी मिल जाते हैं। जैसे, वह इस बात को न माने। (गोड़ी)

इसे देखा जा चुका है कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने सामाजिक निबंध भ लिखे हैं और साहित्यिक निबंध भी। उनके साहित्यिक निबंधों मे प्रधानता आत्मव्यंजक निबंधों की है। आत्मव्यंजक निबंधों में चटपटी और मनोरंजक शैली का उपयोग प्रायः होता है, जैसा कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र ने किया है। ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार के निबंधों में भी यत्र-तत्र गभीर वा विचारात्मक स्थल आ गए है, अतः शैली भी यत्र-तत्र विचारप्रधान हो गई है। सामाजिक निबंधों में विचारात्मकता का होना स्वाभाविक है। अतः उनकी शैली गंभीर अवश्य हो जाती है। परंतु श्रीप्रतापनारायण मिश्र के सामाजिक निबंधों की शैली की विशेषता यह है कि वह भी वैसी ही मनोरंजक है जैसी आत्मव्यंजक निबंधों की शैली। हाँ, उसमें विचारात्मकता का पुट अवश्य है। परंतु वह किसी

भी प्रकार से बोझिल नहीं जान पड़ती। इनके वाक्य प्रायः छोटे होते हैं। आत्मव्यंजक निबंधों में ऐसे वाक्य विशेष रूप से व्यवहृत हुए है।

श्रीप्रतापनारायण मिश्र उस प्रभावात्मक शैली का उपयोग करते हुए प्रायः देखे जाते हैं जिसमे व्याख्यानात्मक अंश विशेष होता है। जैसे, ऐसा भी कोई है जो अपने व अपने मित्र के तथा अपने बंधु के वा अपने पड़ोसी के वा अपने देश के बालक को देख के प्रसन्न न होता हो? ऐसा भी कोई है जो सर्वथा रंजापुजा होने पर भी बालक न होने से चिंताकुल न होता हो? ऐसा भी कोई है जो निस्संतान लोगों पर तरस न खाता हो?

श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली की सब से बड़ी विशेषता है उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप की स्पष्ट झलक। इनका शब्द-चयन इस ढंग का है, इनका वाक्य-विन्यास इस ढग का है, इनके द्वारा मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इस ढंग का है कि इनके व्यक्तित्व की पूरी छाप इनकी शैली द्वारा मिल जाती है। इसका कारण यह है कि इनकी शैली मे बनावटीपन कहीं भी नहीं लक्षित होता। इनकी शैली हृदय मे उठे भावों-विचारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

उपर्युक्त मीमासा से यह स्पष्ट है कि श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली की सब से बडी विशेषता है उसकी मनोरंजकता। ये प्रधानतः आत्मव्यजक निबधकार थे भी। श्रीबालकृष्ण भट्ट ने भी आत्मव्यजक निबंध लिखे हैं, परतु अधिक नहीं। ऐसी परिस्थिति मे उनके इस प्रकार के निबधों मे मनोरजक शैली का उपयोग हुआ तो है परतु इनकी मनोरजक शैली श्रीप्रतापनारायण मिश्र की मनोरजक शैली की तुलना मे नहीं रखी जा सकती। इनकी शैली में वह चटपटापन नहीं है जो श्रीप्रतापनारायण मिश्र की शैली में विद्यमान है। इनकी मनोरजक शैली में यत्र-तत्र विचारात्मक वा गंभीर शैली का पुट भी मिला है। और, यदि अच्छी तरह विचार किया जाय तो विदित होगा कि ये प्रधानतः विचारात्मक वा गभीर शैलीकार थे भी। कारण कि इनके सामाजिक तथा साहित्यिक निबधों मे भी विचारप्रधान निबधों की ही प्रधानता है। वैसे तो इन्होंने सभी प्रकार के निबंध लिखे है और उन्हीं के अनुकूल शैलियों का प्रयोग किया है, परतु इनके सभी प्रकार के निबंधों में विचारात्मकता का पुट है। अतः विचारात्मक वा गंभीर शैली स्वतः आ गई है। ये अध्ययन-मननशील गभीर व्यक्ति थे भी। इनकी भावात्मक तथा वर्णनात्मक शैलियों मे काव्यात्मकता का अच्छा पुट है। इनके कथात्मक निबंध में कथा कहने की उतनी प्रवृत्ति नही लक्षित होती जितनी विचारों को उपस्थित करने की प्रवृत्ति। अतः कथा कहने वा विवरण देने की

शैली का अच्छा रूप इनमें नहीं मिलता। इनकी शैली में व्यंग्य व्यक्त करने की अच्छी सामर्थ्य है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट की भाषा मे श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाषा की भाँति किसी भी भाषा से शब्दग्रहण करने का विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। ये भी अरबी और फारसी के शब्दों को यथाप्रसग रखते है। श्रीबालकृष्ण भट्ट अँगरेजी के शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक करते थे। भारतेंदु-युग के अन्य निबधकार भी अँगरेजी शब्दो का प्रयोग अवश्य करते थे, परंतु उनमें इनका आधिक्य नहीं दिखाई पड़ता। प्रचलित अँगरेजी शब्दों की तो बात ही दूसरी है, कठिन अँगरेजी शब्दों का प्रयोग करते समय श्रीबालकृष्ण भट्ट प्रायः उनका हिंदी-पर्याय दे दिया करते थे। परतु कभी-कभी बिना पर्याय दिए भी ये उनका प्रयोग कर देते थे और ऐसे शब्दो का प्रयोग कर देते थे जो अँगरेजी न जानने-वालो को सहज बोधगम्य नहीं हो सकते। जैसे—सरकुलेशन, फिलासोफी, कोच, प्राइमरी एज्यूकेशन, पालिटिक्स, एक्सपोर्ट, रिलीफ वर्क्स, प्यून, सोशल कान-फरेंस, कंपिटीशन।

इनकी शैली मे मुहावरो, लोकोक्तियो तथा उद्धरणो का प्रयोग भी अधिक मिलता है। सस्कृत के उद्धरणों का ये अत्यधिक प्रयोग करते थे। लोकोक्तियों का प्रयोग भी यथाप्रसग हुआ है। मुहावरो के प्रयोग की ओर भी इनकी प्रवृत्ति अधिक थी। कुछ निबध इन्होने भी, श्रीप्रतापनारायण मिश्र की भाँति, मुहावरों का चमत्कार दिखाने के लिए ही लिखे है।

श्रीबालकृष्ण भट्ट में तुकदार शब्द, वाक्यखड और वाक्य लिखने की अधिक प्रवृत्ति तो नहीं पाई जाती परतु ऐसी प्रवृत्ति के कुछ स्थल अवश्य मिलते है। स्मरण रखने की बात यह है कि यह प्रवृत्ति इनकी आरभिक रचनाओ में ही प्रायः मिलती है। एक उदाहरण देखिए—"यह उसी करुणा वरुणालय दीनोद्धारक दीनजनपालक दयासागर की कृपा का लेश है कि आज हम इस जून एक ऊन दो के ऊपर सून वाली संख्या मे प्रवेश कर रहे हैं।

पुराने तथा हिंदी में प्रचलित सस्कृत के बने-बनाए रूपों का प्रयोग भी ये करते थे। जैसे, हटानैं, हरै, रीझैं, कहैं, ढहाय कै, गवाँय, सक्ता, भाँत-भाँत, ऐगुन, किमपि, निश्चित्तमेव, अततोगत्वा, दैवात्।

इन्होंने कहीं-कहीं अशुद्ध प्रयोग भी किए हैं। 'कोई समय पहले'। 'हाल मे स्वामी दयानंद ने इसकी चेष्टा किया'। 'भूतपूर्व यहाँ के योगी और संयमी अपनी दमन शक्ति और उपदेश से पृथ्वी भर के लोगों को आमंत्रित किए थे'। 'हमारी समाज जर्जरित होती जाती है'।

ऊपर की विवेचना से यह स्पष्ट है कि भारतेंदु-युग के निबंधकारों की शैली की सामान्य प्रवृत्ति फारसी, अरबी आदि के शब्दों के प्रयोग की ओर थी। उसमें उपर्युक्त भाषाओं के शब्दों को न प्रयुक्त करने का आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हुए भी वे अपनी शैली में संस्कृत और हिंदी के शब्दों का प्राचुर्य तो रखते ही थे। वे हिंदी के निबंधकार थे ही। श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के विचार इस विषय में दूसरे ढंग के थे। वे तत्सम तथा तद्भव शब्दों के प्रयोग के हिमायती थे और उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग के विषय में उनके विचार अच्छे नहीं थे, जो इस उद्धरण से स्पष्ट है—

······अधिकांश हिंदी के उन सुलेखकों के लेखों मे जो संस्कृत के भी पंडित हैं अपनी सरस नागरी भाषा को विशुद्ध हिंदी के सरल और संस्कृत के मनोहर शब्दो से सुसज्जित करने के स्थान पर उर्दू अर्थात् फारसी, अरबी के कठिन, दुर्बोध और अशुद्ध जो प्रायः बेढगे रीति पर आकर न केवल उस प्रबंध की शोभा का ह्रास करते, वरंच उर्दू पठित पाठको को रचयिता के अनुचित साहस पर उपहास का अवसर देते, न उसकी अभिज्ञता प्रमाणित कर देते हैं, अवश्य है।*

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस सिद्धात का उपयोग अपनी शैली में भी किया है। उनकी शैली में तत्सम तथा तद्भव शब्दो का प्रयोग ही मिलता है। अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग करते भी थे तो उन्हीं शब्दों का जो अति प्रचलित है और हिंदी में जिनका प्रयोग धडल्ले के साथ होता है। ये अरबी, फारसी आदि के शब्दों के प्रयोग के पक्ष मे तो नहीं थे, परंतु उर्दू और फारसी के उद्धरणों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग इन्होंने किया है। हिंदी तथा संस्कृत के उद्धरण भी इन्होंने रखे हैं। हिंदी लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग तो इनमें काफी मिलता है। शैली के कलापक्ष वा बहिरंग पर दृष्टि रखनेवाले शैलीकार के लिए यह आवश्यक है। और, यह हम पर विदित है कि श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की दृष्टि चमत्कारवाद वा कलापक्ष पर विशेष रहती थी। शैलीगत सौंदर्य के अन्य उपकरणों पर भी इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। जैसे, वाक्य मे आनुप्रासिक पदावली का प्रयोग, तुकदार वाक्यखंडों, तथा वाक्यों की योजना; इसी प्रकार चमत्कार के लिए ही मुहावरों का अधिक रखना आदि। कुछ उदाहरण देखे—

'उसे इन दोनो दलों की दलादली ने दल दल कर समाप्त कर डाला',

---

* आनंदकादंबिनी, माला ६, मेघ ११, १२।

'इस वर्ष भी कुछ लोगों ने होली मनाई और किसी किसी से कुछ ठिकाने से बोली ठोली बोलते भी बन आई। जहाँ कुछ कचाई है उसके अर्थ आगामि मे सुघड़ई लखाई जाने पर ध्यान रहे, व्यर्थ की ढिठाई से हँसाई कराना ठीक नहीं।', 'किंतु बात की बात में वह बात जाती रही और दूसरा ही बात बहना आरंभ हुआ।'

ये कभी-कभी बहुत बड़े-बड़े वाक्य लिखते हैं। परंतु वाक्यों के बड़े होने पर भी उनमे उलझन नहीं रहती। मध्यम वाक्यों (परेंथेटिकल सेंटेंसेज) के लिखने की प्रवृत्ति भी इनमे अधिक दिखाई पडती है। इस प्रकार के वाक्य में किसी छूटी हुई बात को रखने की चाल है जो प्रधान वाक्य में नहीं आ पाती। जैसे--फिर कौन जाने कि यह जोरू की गुलाम जाति उन्हीं के कहने से इस चलन को स्वीकृत किए हो, क्योकि मुखचुंबन के समय—कि जो प्रथा उनके यहाँ अति अधिकता से प्रचरित है—बहुत सा बाल दुःख का हेतु होता ही होगा।

इनमे भी यदा-कदा पुराने शब्द तथा प्रयोग मिलते हैं। जैसे, तौभी, होई (हो ही), कबी, सबी, तबी, पुस्तकैं, निकालै, करैं आदि। हिंदी में प्रचलित सस्कृत के बने-बनाए रूपों के प्रयोग भी इन्होंने किए है। हटात्, बलात्, पूर्णरीत्या, येनकेन प्रकारेण, सुतराम् आदि। भाववाचक सज्ञा के भारीभरकम रूप के प्रयोग की ओर भी इनकी दृष्टि यदा-कदा रहती थी। जैसे, स्वाछंद्य आदि। इनमे भी कहीं-कहीं दुष्प्रयोग मिल जाते है—न इसमें इस प्रकार का प्रचार दे सके जैसा कि विचार किए थे।

श्रीबदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सामाजिक निबंध भी लिखे हैं और साहित्यिक निबंध भी। सामाजिक निबंधों का विचारात्मक होना स्वाभाविक है। जो साहित्यिक निबंध मिलते हैं उनमें कुछ विचारात्मक हैं और कुछ वर्णनात्मक। जो निबंध वर्णनात्मक हैं उनमे काव्य-तत्त्व का अच्छा रूप विद्यमान है। ऐसे निबधों के लिए इस तत्त्व की आवश्यकता होती भी है। अभिप्राय यह कि इन्होने प्रधानतः विचारात्मक निबंध ही लिखे हैं। अतः प्रधानतः इन्होंने गभीर्य शैली का ही निर्माण किया है। इनकी शैली मे बड़ी प्रभावात्मकता है—कलापक्ष के कारण भी और विचारों की तेजी के कारण भी। स्मरण रखने की बात यह है कि इनके विचार प्रायः मौलिक होते थे, ऐसी स्थिति में उनका प्रभावपूर्ण होना स्वाभाविक ही है।

———

नामानुबंध

(ह)